# राजनीतिक अर्थशास्त्र

## चुनिंदा निबंध


फ्रेडरिक बास्तियात

फ्रेंच से अनुवाद

सीमौर केन

संपादन

जॉर्ज बी. डी हुसजार

प्रस्तावना

एफ.ए. हायक

फाउंडेशन फॉर इकानॉमिक एजुकेशन

इरविंगटन ऑन हडसन, न्यूयॉर्क

# लेखक के बारे में

**फ्रेडरिक बास्तियात** (1801-1850) एक फ्रांसीसी अर्थशास्त्री, राजनीति के जानकार और लेखक थे। वे फ्रांस में मुक्त व्यापार आंदोलन के उसकी 1840 में शुरूआत से लेकर अपनी असामयिक मौत तक लीडर रहे। उनकी जिंदगी के पहले 45 वर्ष आज़ादी के समर्थन में प्रखर लेखन के लिहाज से बेहद प्रभावी पांच अंतिम वर्षें की तैयारियों में ही बीते।

बास्तियात साप्ताहिक अखबार *ले लिब्र एचेंज* (*Le libre-échange)* के संस्थापक सदस्यों में से थे। उनका कई पत्रिकाओं में योगदान था और रोजमर्रा की समस्याओं पर निकलने वाले पैम्फ्लेट्स और कई भाषणों पर उनकी छाप होती थी। उनका अधिकांश लेखन प्रत्यक्ष तौर पर 1848 की क्रांति के ठीक पहले या बाद का था। यह एक ऐसा दौर था जब फ्रांस तेजी से समाजवाद को अपना रहा था। लेजिस्लेटिव असेंबली में डेप्युटी के तौर पर बास्तियात ने निजी जायदाद के अधिकारों के लिए जमकर संघर्ष किया, लेकिन बदकिस्मती से उनके अधिकांश साथियों ने उनकी अनदेखी की। फ्रेडरिक बास्तियात को हमेशा आज़ादी के एक ऐसे अग्रणी समर्थक के तौर पर याद किया जाएगा, जिनका लेखन आज भी सामयिक है।

# अंग्रेजी संस्करण की प्रस्तावना

फ्रेडरिक बास्तियात ने अनगिनत ऐसे निबंध या पैम्फ्लेट्स लिखे जो उनके विचारों को सब तक पहुंचाते थे और गलतियों का भी खुलासा करते थे। उनके कई महत्वपूर्ण लेखों और पैम्फ्लेट्स को इस संस्करण में शामिल किया गया है। इनमें से 'द लॉ' और 'व्हाट इज सीन एंड व्हाट इज नॉट सीन' काफी मशहूर हैं, अन्य शायद इतने लोकप्रिय नहीं। हैनरी हेजलिट ने अपनी किताब *इकोनोमिक्स इन वन लेसन* में 'व्हाट इज सीन एंड व्हाट इज नॉट सीन' के बारे में लिखा है, 'इसे बास्तियात के पैम्फ्लेट्स में उल्लेखित सोच का आधुनिकीकरण, विस्तार और सामान्यीकरण कहा जा सकता है।'

वर्तमान खंड (वॉल्यूम) में निबंधों के प्रबंध के लिए संपादक जिम्मेदार है।

यहां बास्तियात के तमाम लेखों के मूल फ्रैंच संस्करण के अंग्रेजी में यथासंभव जस के तस अनुवाद की कोशिश की गई है। वर्तमान अनुवाद में तीन मूल संस्करणों का संदर्भ भी शामिल किया गया है। तीन तरह के नोट शामिल किए गए हैं: अनुवादक के नोट्स आम आदमी के लिए हैं और यह व्यक्तियों और शब्दावली से संबंधित हैं। बास्तियात के नोट बिना किसी ऐसे संकेत चिन्हों के हैं। केवल अनुवादक के नोट्स ही पेजों के नीचे दिए हुए हैं। संपादक और बास्तियात के नोट्स खंड (वॉल्यूम) के अंत में हैं। ये अंतिम दो ही सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण हैं, लेकिन सामग्री को एक जगह करके जटिलता बढ़ाने की बजाय पठनीयता को बढ़ाने की कोशिश की गई है। जहां फ्रांसीसी अनुवादक ने *इकानॉमिक हार्मोनीज* या *इकानॉमिक सोफिज्म* का मूल संदर्भ दिया है, वहां अंग्रेजी अनुवाद में दिए गए संदर्भ ने उसकी जगह ले ली है।

हालांकि बास्तियात के अंग्रेजी अनुवाद के तीनों खंड एक ही साथ प्रकाशित किए गए हैं, लेकिन फिर भी अनुवादक के नोट्स और संपादकीय प्रस्तावना में कुछ बातें दोहराई गई हैं। यह जरूरी है क्योंकि हो सकता है कि कुछ को इन तीन खंडों में से पहला खंड ही मिल सके। यही वजह है कि सभी खंड अपने आप में परिपूर्ण ही हैं।

संपादक, सीमोर केन, डल्यू. हैडन बोयर्स को धन्यवाद देना चाहता है, एफ.ए. हायक को परिचय (इंट्रोडक्शन) लिखने के लिए धन्यवाद। आर्थर गोडार्ड और विलियम वोकर फंड को भी धन्यवाद।

**- जॉर्ज बी. डी. हुज़ार**

# परिचय

फ्रेडरिक बास्तियात को एक आर्थिक विचारक के तौर पर मिली ख्याति पर सवालिया निशान लगाने वाले भी यह तो मानेंगे कि वे समसामयिक विषयों पर लिखने वाले एक 'जीनियस' थे। जोसेफ शूम्पटर तो उन्हें 'इतिहास का सबसे मेधावी आर्थिक पत्रकार' कहते हैं। आम आदमी के लिए उनके द्वारा लिखे गए निबंधों के इस पहले खंड के परिचय में हम बात को बस यहीं तक सीमित कर देंगे। कुछ लोग हो सकता है शूम्पटर के बास्तियात को विचारक नहीं मानने की बात को बास्तियात के कद को कम किए बगैर स्वीकार सकते हैं। यह सच है कि एक लेखक के तौर पर अपने बहुत छोटे से कैरियर के अंत तक अपनी धारणाओं के सैद्धांतिक खुलासे के प्रयास में वह विषय के जानकारों को संतुष्ट नहीं कर पाए थे। वाकई यह चमत्कार होता कि सार्वजनिक मामलों पर केवल पांच साल ही बतौर नियमित लेखन और तेजी से उनकी ओर बढ़ती मौत से जूझने के दौरान वे एक स्थापित धारणा के खिलाफ इस मामले में भी कामयाब हो जाते। लेकिन क्या ऐसा नहीं लगता कि महज 49 वर्ष की उम्र में मौत ने ही उन्हें ऐसा करने से रोक दिया। उनका विवादित लेखन, जो कि उनके द्वारा छोड़ा गया सबसे महत्वपूर्ण लेखन है, यह बताता है कि उनको इस बात का ज्ञान था कि किस बात का महत्व है और उनमें मामले की तह तक जाने का एक नैसर्गिक गुण भी था, जो उनको इस विषय में योगदान देने में काफी मदद कर सकता था।

वर्तमान खंड के पहले ही निबंध का बहुचर्चित शीर्षक *'व्हाट इज सीन एंड व्हाट इज नॉट सीन'* ही इसे साबित कर देता है। किसी ने भी एक तार्किक आर्थिक नीति के मूल में रची-बसी दिक्कतों को इस तरह एक पंक्ति में इतनी सटीकता के साथ नहीं सहेजा था और मैं कहना चाहूंगा कि आर्थिक आज़ादी के लिए भी। समूची सोच को इतने कम शब्दों में समेटने की क्षमता के कारण ही मैंने पहली ही पंक्ति में उनका जिक्र 'जीनियस' के तौर पर किया। यह वाकई ऐसा लेखन है जिसके इर्द-गिर्द उदार आर्थिक नीति का ताना-बाना बुना जा सकता है। और हालांकि यह शीर्षक केवल पहले खंड का ही है, यह सभी के लिए एक मार्गदर्शक सोच की तरह बन जाता है। अपने वक़्त की तत्कालीन भ्रांतियों के विरोध में बास्तियात इस सोच का बार-बार खुलासा करते हैं। मैं बाद में यह बताऊंगा ही कि उनके विचार आज आधुनिक आवरण में छिप गए हैं, लेकिन उनका मूल बास्तियात के काल से आज तक नहीं बदला है। लेकिन उससे पहले मैं उनकी मूल सोच के आम महत्व का जिक्र करना चाहता हूं।

आम भाषा में कहा जाए तो अगर हम आर्थिक नीति के उपायों को उनके तात्कालिक और निकट भविष्य के परिणामों के लिहाज से ही देखेंगे तो हम न केवल कुछ व्यावहारिक हासिल

करने से वंचित रह जायेंगे बल्कि हम आज़ादी पर अंकुश लगाएंगे और हमारे उपायों से फायदे की बजाय नुकसान ही ज्यादा होगा। आज़ादी इसलिए जरूरी है कि हर एक व्यक्ति को अपनी परिस्थितियों और जरूरतों के लिहाज से अपनी मर्जी से काम करने का मौका मिले। इसलिए हम नहीं जानते कि उनकी आज़ादी पर अंकुश लगाकर हम उन्हें क्या हासिल करने से रोक रहे हैं। हर तरह का प्रतिबंध इसी तरह का एक अंकुश ही होता है। वे हालांकि हर बार कुछ हासिल करने के लिए ही लगाए जाते हैं। सरकार के कदम के परिणामों को देखने के विपरीत हम हर एक के फायदे को महज एक संभावना ही मान सकते हैं, लेकिन यह हर व्यक्ति के फायदे का तो शायद ही हो। परिणामस्वरुप, अगर ऐसे मामलों में आम आज़ादी की धारणा की बजाय हर एक व्यक्ति को अलग-अलग फायदा पहुंचाने का प्रयास होता है, तो हर एक मामले में आज़ादी की हार ही होगी। बास्तियात की अपनी मर्जी की आज़ादी का मत सही था, जिसे कभी परिस्थितियों का हवाला देकर नहीं रोकना चाहिए। आज़ादी का अगर तभी सम्मान हो जब उसके खात्मे से होने वाले फायदे को गिनाया जा सके, तो भी आज़ादी का शायद हर एक पहलू प्रभावित ही होगा।

बास्तियात ने अपने तर्कों से अपने वक़्त की बार-बार आने वाली तय भ्रांतियों पर ही निशाना साधा। यह तय है कि उस वक़्त उनको बड़ी आसानी से इस्तेमाल कर लेने वाले लोग आज उन्हें इतने भोलेपन से इस्तेमाल नहीं कर सकेंगे। लेकिन पाठक इस खुशफहमी में न रहे कि वे भ्रांतियां आज समकालीन आर्थिक बहसों में महत्वपूर्ण भूमिका नहीं निभातीं। फर्क है तो इतना कि आज वे आधुनिकता के आवरण में हैं और इसलिए उन्हें पहचान पाना ज्यादा मुश्किल हो गया है। वह पाठक जो इन भ्रांतियों को उनके साधारण रुप में पहचानना सीख गया है, कम से कम ज्यादा वैज्ञानिक दिख रहे तर्कों के वैसे ही परिणामों को शक की निगाह से तो देखेगा ही। हालिया अर्थशास्त्र का यह गुण सा बन गया है कि नित नए तर्कों से उसने पूर्वाग्रहों को स्थापित करने का प्रयास सा चला रखा है क्योंकि शब्दजालों में बंधकर वे बेहद दिलकश और सुविधाजनक लगने लगते हैं। जैसेः खर्च करना एक अच्छी बात है और बचत खराब, बेकार के लाभ और पूंजी अधिकांश लोगों को बिगाड़ देते हैं, पैसा सरकार के हाथ में हो तो लोगों के हाथ में होने से ज्यादा फायदा देगा, यह सरकार का कर्तव्य है कि वह यह सुनिश्चित करे कि हर एक को उसका हक मिले। इत्यादि।

इन सभी विचारों की ताकत आज हमारे इस युग में भी बरकरार है। फर्क है तो केवल इतना कि उनसे मुकाबले के लिए आज बास्तियात नहीं हैं। बास्तियात उस दौर में पेशेवर अर्थशास्त्रियों के गुट में थे जो उस धारणा का मुखर विरोध करते थे जिससे कुछ तबके विशेष के लोगों को ही फायदा मिलता था। आज ऐसे ही प्रस्ताव प्रभावशाली *स्कूल ऑफ*

*इकोनोमिक्स* की नई जमात द्वारा बहुत ही प्रभावशाली तरीके से पेश किए जाते हैं। आम आदमी के लिए जिसे इस विषय की ज्यादा जानकारी नहीं है। मुश्किल ही है कि बास्तियात जिन भ्रांतियों से लड़े हों वो आज रूप बदलकर फिर मुंह बाएं न खड़ी हो। मैं केवल एक ही उदाहरण दूंगा। बास्तियात के बहुचर्चित आर्थिक व्यंग्य, *द पेटिशन ऑफ द कैंडलमेकर्स अगेन्स्ट द कम्पीटिशन ऑफ द सन* जिसमें सूरज कि रोशनी रोकने के लिए तमाम खिड़कियों को बंद करने की सलाह दी गई थी ताकि मोमबत्ती बनाने वाले समृद्ध हों और उनके कारोबार के जरिये हर एक व्यक्ति समृद्ध हो। या फिर अर्थशास्त्र के इतिहास पर एक बहुचर्चित फ्रांसीसी पाठ्यपुस्तक के ताजा संस्करण का यह फूटनोट, 'यह बात गौर करने लायक है कि कीन्स के मुताबिक बेरोजगारी की अवधारणा और गुणक के सिद्धांत (*थ्योरी ऑफ मल्टीप्लायर*) के आधार पर मोमबत्ती बनाने वालों का यह तर्क वास्तव में पूरी तरह से वैध है।'

जागरुक पाठक देखेंगे कि बास्तियात ने जिन अनगिनत समस्याओं से संघर्ष किया उनसे हम रूबरू हैं। हालांकि हमारे वक़्त के मुख्य खतरों का जिक्र इन पन्नों में नहीं हैं। हालांकि उनके वक़्त में कर्ज के लिए कई अजीबोगरीब प्रस्तावों का सामना करना पड़ता था, सरकारी घाटे से सीधी महंगाई (इन्फ्लेशन) उनके वक्त में बड़ा खतरा नहीं थी। उनके लिए खर्च में बढ़ोतरी के मायने थे करों में तत्काल और अनिवार्य बढ़ोतरी। कारण जाहिर सा है, उन तमाम लोगों की तरह जिन्होंने अपनी जिंदगी में भीषण महंगाई देखी हो, मुद्रा का लगातार अवमूल्यन शायद उनके जमाने के लोगों की समझ से बाहर होता। इसलिए अगर पाठक खुद को बास्तियात द्वारा उल्लेखित आम भ्रांतियों से बेहतर समझकर उनको खारिज करना चाहता है, तो उसे याद रखना चाहिए कि एक सदी पहले हुआ यह व्यक्ति कई अन्य मामलों में हमारी पीढ़ी से ज्यादा बुद्धिमान था।

**- एफ.ए. हायक**

# 1

# क्या देखा जाता है और क्या नहीं देखा जाता है[1]

आर्थिक दुनिया में एक अधिनियम, एक आदत, एक संस्थान, एक कानून केवल एक प्रभाव उत्पन्न नहीं करते, बल्कि प्रभावों की श्रृंखला का एक कारण बन जाते हैं । इन तमाम प्रभावों में केवल पहला ही तत्काल होता है, यह अपने कारण के साथ ही सामने आ जाता है, यह दिखने लगता है। अन्य प्रभाव इसके बाद ही आते हैं, वे दिखाई नहीं देते। अगर हम उनको पहले ही जान लेते हैं तो हम भाग्यशाली होते हैं।

एक कमजोर (bad) अर्थशास्त्री और एक अच्छे (good) अर्थशास्त्री में केवल एक ही अंतर होता हैः कमजोर अर्थशास्त्री अपने आपको केवल दिखने वाले प्रभावों तक ही सीमित रखता है, जबकि अच्छा अर्थशास्त्री दोनों का खयाल रखता है, जो दिखाई दे रहा है और जिसे पहले ही देखा जाना चाहिए।

फिर भी यह अंतर बहुत ज्यादा होता हैः क्योंकि ऐसा हमेशा ही होता है कि तात्कालिक प्रभाव फायदेमंद होता है जबकि बाद में होने वाले प्रभाव अमांगलिक और नुकसान पहुंचाने वाले होते हैं। इसका यही मतलब है कि एक बड़ी बुराई के लिए एक कमजोर अर्थशास्त्री छोटे से नजदीकी लाभ को अपना लेता है, जबकि अच्छा अर्थशास्त्री भविष्य के फायदे के लिए ताजा बुरे वक़्त को भी झेलने का जोखिम मोल ले लेता है।

यह बात तो स्वास्थ्य और सदाचार (मॉरल) के लिए भी सही होती है। किसी आदत का शुरूआती स्वाद जितना मीठा होगा उसके बाद में कड़वा साबित होने की उतनी ही ज्यादा आशंका है व्यभिचार, आलस और फिजूलखर्ची इसके अच्छे उदाहरण हैं। जब एक व्यक्ति दिखने वाले प्रभाव से मंत्रमुग्ध होकर आने वाले प्रभाव को नहीं देख पाता, तो वह शोचनीय आदतों का गुलाम हो जाता है। न केवल स्वाभाविक रुझान के कारण बल्कि जानबूझकर भी।

यही इंसान के विकास में मौजूद दर्दसंघर्ष का भी खुलासा कर देता है। पालने में रहने के वक़्त से अज्ञान उसे घेर लेता है, इसलिए वह हर कदम उसके पहले प्रभाव के लिहाज से ही उठाता है। बचपन में वह यही देख और कर पाता है।

उसे अन्य प्रभावों को देखकर हर काम करने की समझ तो काफी वक़्त के बाद आती है।[2] दो बिलकुल अलग किस्म के शिक्षक उसे यह बात सिखाते हैंअनुभव और दूरदृष्टि। अनुभव

बहुत प्रभावशाली तरीके से लेकिन क्रूरता से सिखाता है। अनुभव यह हमें हर कदम का प्रभाव उसका अहसास कराकर सिखाता है और अंततः हम उस बात को सिखे बगैर नहीं रहते, अपने आपको झुलसा लेने के कारण वह आग जलती रहती है। मेरी प्राथमिकता, जहां तक संभव हो, यही होगी कि इस बेहद कठोर शिक्षक की जगह मैं ज्यादा विनम्र स्वभाव के शिक्षक को रख सकूं: दूरदृष्टि। इसी वजह से मैं कुछ आर्थिक घटनाओं की पड़ताल करुंगा, ऐसी जिनमें दिखने वाले और न दिखने वाले प्रभावों का असर दिखा।

**1. टूटी हुई खिड़की (ब्रोकन विंडो)**

क्या आपने उस एक सक्षम नागरिक जेम्स गुडफेलो [मूल *फ्रेंच किताब में, जैस बोनहोमी को अंग्रेजी के 'जॉन बुल' की तरह एक ऐसे व्यक्ति के वर्णन के लिए इस्तेमाल किया जाता है, जो व्यावहारिक, जिम्मेदार और सहज आम आदमी हो*-ट्रांसलेटर ] के गुस्से को देखा था। जब उनके न सुधरने वाले बेटे ने खिड़की का कांच तोड़ दिया था? अगर आप उस वाकये के वक़्त वहां मौजूद होते तो आपने देखा होता कि तमाशबीन, भले ही उनकी संख्या 30 के आस-पास हो, दुर्भाग्यशाली मकान मालिक को एक सी सांत्वना देना चाह रहे थे, 'तूफान की हवा किसी का भला नहीं करती। ऐसे ही हादसों से तो उद्योग चल रहे हैं। हर किसी को जीवन-यापन तो करना ही है। अगर कोई कभी भी कोई खिड़की न तोड़े तो फिर बेचारे कांच का काम करने वालों का क्या होगा?'

सांत्वना भरे इस हल में ही एक समूचा सिद्धांत सा है कि इस साधारण से मामले में दूध का दूध और पानी का पानी करना एक अच्छा विचार है, किसी को रंगे हाथों पकड़ना (फ्लेग्रांत डेलिक्तो)। क्योंकि इस मामले में वे तमाम बातें हैं जो हमारे अधिकांश आर्थिक संस्थानों में मौजूद हैं।

मान लीजिए कि इस नुकसान की भरपाई पर छह फ्रैंक का खर्च आया। अगर आपका यह कहना है कि इस नुकसान के कारण कांच उद्योग को छह फ्रैंक का प्रोत्साहन मिलता तो मैं आपसे सहमत हूं। मैं आपके तर्क को चुनौती नहीं दूंगा क्योंकि यह सही है। कांच वाला आएगा अपना काम करेगा, छह फ्रैंक हासिल करेगा और खुद को और उस लापरवाह बच्चे का शुक्रिया अदा करेगा। यह वो बात है जो देखी जा रही है।

लेकिन अगर कटौती के जरिये आप इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं, जैसा कि अक्सर होता है, कि खिड़की के कांच तोड़ना अच्छी बात है, क्योंकि यह पैसे के चलन को बढ़ावा देता है, और इससे कुल मिलाकर उद्योग का भला होता है। मैं चीखकर विरोध करना चाहूंगाः ऐसा नहीं

होगा! आपका सिद्धांत क्या देखा जाता है पर आकर थम जाता है। इसमें क्या नहीं देखा जाता का कोई जिक्र नहीं है।

यह नहीं देखा जाता कि हमारे एक नागरिक ने एक काम के लिए छह फ्रैंक खर्च किए हैं, इसलिए अब वो उन छह फ्रैंकों को किसी अन्य काम के लिए खर्च नहीं कर पाएगा। यह नहीं देखा जाता कि अगर उसे खिड़की का कांच नहीं बदलना पड़ता तो वो बदलता. उदाहरण के लिए अपने कटे-फटे जूते या फिर अपनी लाइब्रेरी के लिए एक और किताब। संक्षेप में उसने अपने छह फ्रैंक ऐसे किसी काम में इस्तेमाल किए होते, जिनके लिए अब उसके पास पैसे नहीं हैं। आइए अब उद्योग पर एक सर्वसामान्य नजर डालें। खिड़की का कांच टूट जाने के कारण कांच उद्योग को छह फ्रैंक का प्रोत्साहन मिला, यह वह बात है जो देखी जाती है।

अगर खिड़की का कांच नहीं टूटता तो जूता उद्योग (या किसी अन्य) को छह फ्रैंक का प्रोत्साहन मिल गया होता, यह वह बात है जो देखी नहीं जाती।

अगर आप जो देखा नहीं जाता को नकारात्मक और जो देखा जाता है उसे सकारात्मक मानकर सोचें, तो यह बात साफ हो जाएगी कि इससे उद्योग को आमतौर पर कोई फायदा नहीं हुआ और न ही राष्ट्रीय रोजगार पर ही इसका कोई असर हुआ। खिड़की का कांच टूटे या न टूटे।

आइए अब जेम्स गुडफेलो के बारे में सोचें।

पहली परिकल्पना, खिड़की का कांच टूटने की, जिसमें उसने छह फ्रैंक खर्च कर दिए, लेकिन पहले की एक खिड़की से न कम न ज्यादा यानी कि उतना ही आनंद उठा रहा है।

दूसरी परिकल्पना, जिसमें यह वाकया नहीं हुआ होता, वह इन छह फ्रैंक को नये जूतों पर खर्च करता और फिर वह नये जूतों के साथ खिड़की का भी पहले की तरह आनंद उठाता।

अब अगर जेम्स गुडफेलो समाज का एक सदस्य है तो हमें यह मानना चाहिए कि इसमें लगी मेहनत और इसके आनंद को देखते हुए, टूटी हुई खिड़की का मूल्य समाज आंक न पाया।

और इसे एक आम तर्क बनाने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं, 'समाज में उन बातों का मूल्य घट जाता है जिन्हें बेवजह नुकसान पहुंचाया गया हो।' और इस सूत्र वाक्य पर भी, जो संरक्षणवादियों के रोंगटे खड़े कर देगा 'तोड़ना, नष्ट करना, तहस-नहस करना राष्ट्रीय रोजगार को बढ़ावा देना नहीं है।' या संक्षेप में, 'विनाश फायदेमंद नहीं है।'

इस पर मॉनिटर इंडस्ट्रियाल [कमेटी फॉर डिफेंस ऑफ डोमेस्टिक इंडस्ट्री का अखबार, एक संरक्षणवादी संस्था] क्या कहेगा, या फिर एम. डी सेंटशेमेंस [*ऑगस्ते, विकोमते डी सेंटशेमेंस (1777-1861), व्यापार में पुनर्निर्माण, संरक्षण और समर्थन के तहत डिप्टी और काउंसिलर।*

*उनके 'बाधाओं पर रूख का बास्तियात द्वारा अपनी रचना नॉवेल एसे सूर ला रिचेस देस नेसंस, 1824 से जिक्र। इसे बाद (1824) में उनके ही ट्रेट डी' इकानॉमी पोलितिक में शामिल किया गया था।*] के चेले, जिन्होंने यहां तक सही-सही हिसाब लगा लिया था कि अगर पेरिस जलता है तो नए सिरे से बनने वाले मकानों से उद्योग को कितना मुनाफा होगा?

मैं इस चतुराई भरे हिसाब के विरोध के लिए माफी चाहूंगा, खासतौर पर तब जब उनकी यह भावना हमारे कानून में स्थान पा चुकी है। लेकिन मैं उनसे गुजारिश करुंगा कि वे इस गणना को दोबारा करें, अपनी बही में जो देखा गया के पास जो नहीं देखा गया के जिक्र के साथ।

पाठकों को इस बात के निरीक्षण के लिए कुछ प्रयास करने होंगे कि इस छोटे से नाटक में दो नहीं तीन पात्र हैं। जेम्स गुडफेलो एक उपभोक्ता का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो इस नुकसान के कारण दो बातों की बजाय केवल एक बात का ही लुत्फ उठा सकते हैं। दूसरा, कांच लगाने वाले की आड़ में फायदा कमाने वाला कांच निर्माता। तीसरा जूता बनाने वाला (या कोई अन्य उत्पादक) जिसका उद्योग इसी वजह से प्रभावित हुआ। यह जो तीसरा व्यक्ति यही दिखाई नहीं देता। देखा नहीं जाता का प्रतिनिधित्व करने वाला यह व्यक्ति भी समस्या का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। वही हमें यह बताएगा कि विनाश में मुनाफा देखना कितना बेहूदा है। यही वह है जो हमें बताएगा कि कारोबार पर प्रतिबंध कितना बेहूदा है, किसी भी तरह से आंशिक विनाश से कम नहीं। इसलिए अगर आप प्रतिबंधात्मक कदमों का साथ देने वाले हर तर्क की जड़ में जाएं तो, आप हमेशा इसी आम तर्क को पाएंगे, 'अगर किसी ने कभी किसी खिड़की का कांच नहीं तोड़ा तो कांच लगाने वालों का क्या होगा?'

**2. कार्यमुक्ति (डिमोबिलाइजेशन)**

एक देश का मामला एक व्यक्ति की तरह ही होता है। जब कोई व्यक्ति खुद को संतुष्ट करना चाहता है तो वह यह देखता है कि इसके लिए जो किया जा रहा है योग्य है। एक देश के लिए सुरक्षा सबसे बड़ी नेमत है। अगर उसे इसे हासिल करना है तो हजारों लोगों को सुरक्षा बलों में स्थान देना होगा और इस पर लाखों फ्रैंक भी खर्च करना होंगे। मुझे कुछ नहीं कहना, यह एक ऐसा आनंद है जो त्याग की कीमत पर हासिल किया गया है।

इसलिए अब मुख्य मुद्दे को लेकर मैं जो बात कहने जा रहा हूं उसे लेकर भ्रम की कोई स्थिति न रहने दें।

एक कानून निर्माता (लेजिस्लेटर) लाखों लोगों की सुरक्षाबलों में भर्ती का प्रस्ताव रखता है, जिससे करदाताओं को लाखों फ्रैंक अदा करने होंगे।

मान लीजिए हम खुद को उसे जवाब देने तक ही सीमित रखते हैं, 'ये लाखों लोग और ये लाखों फ्रैंक हमारी राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए अनिवार्य हैं। यह एक त्याग है, लेकिन बिना इस त्याग के फ्रांस आंतरिक मतभेदों या बाहरी आक्रमण के चलते खंडित हो सकता है।' मेरी इस तर्क पर कोई आपत्ति नहीं है, जो परिस्थितियों के बीच सही भी हो सकता है और गलत भी। लेकिन जो सैद्धांतिक तौर पर किसी आर्थिक अफवाह (हियरसे) का हिस्सा नहीं है। यह अफवाह या गलत बात का रूप तो तब ले लेता है जब त्याग को ही नफा बताया जाने लगता है, क्योंकि यह किसी के लिए फायदेमंद है।

अब अगर मैं गलती नहीं कर रहा, तो इस प्रस्ताव को पेश करने वाला मंच से नीचे उतरा भी नहीं होगा और कोई और तेजी से आगे बढ़कर बोल रहा होगा, 'लगा दो लाखों लोगों को! आप क्या सोच रहे हैं? उनका क्या होगा? वे किस बात पर जिंदा रहेंगे? उनकी कमाई? लेकिन क्या आप जानते हैं कि हर तरफ बेरोजगारी है? कि लोग सभी कामों में भरपूर संख्या में लगे हैं? क्या आप इन सभी को प्रतिस्पर्धा के लिए उतारकर वेतन कम कराना चाहते हैं? आज जबकि सामान्य सी कमाई कर पाने के लाले पड़े हुए हैं क्या यह खुशकिस्मती नहीं है कि सरकार लाखों लोगों को रोजी-रोटी देना चाहती है? यह भी तो सोचिए कि सेना शराब, कपड़े और हथियार इस्तेमाल करती है, इससे मिलों और हथियार बनाने वाले कस्बों में रोजगार के कितने अवसर पैदा होंगे और यह वस्तुएं सप्लाय करने वालों के लिए यह किसी देवदूत की लाई खबर नहीं है। क्या आप इस जबर्दस्त औद्योगिक गतिविधि को खत्म करने की सोच से नहीं घबराते?'

आप देखेंगे, यह भाषण लाखों सैनिकों को बरकरार रखने का पक्ष लेता है, इसलिए नहीं कि देश को सेना की सेवाओं की दरकार है, बल्कि इसके आर्थिक पहलू के कारण। यही वे विचार हैं जिनको मैं खारिज करने का इरादा रखता हूं।

लाखों लोग, जो करदाताओं पर लाखों फ्रैंक का बोझ डालेंगे, यह उन अनगिनत लोगों को लाभ भी पहुंचाएगा जो इस लाखों फ्रैंक के खर्च से मिलने वाले काम से कमाएंगेः यह वो है जो देखा जाता है।

लेकिन करदाताओं की जेब से आने वाले ये लाखों फ्रैंक, करदाताओं और उनको वस्तुओं की आपूर्ति करने वालों की जिंदगी की मुश्किलें बढ़ा देंगे। लाखों फ्रैंक से चलने वाले इनके कामकाज प्रभावित होंगेः यह वो है जो देखा नहीं जाता। आप खुद गणना करके, सोच-समझ कर बताएं कि क्या इस कदम से बड़ी संख्या में लोगों को फायदा हुआ।

जहां तक मेरी बात है तो मैं आपको बताऊंगा कि नुकसान कहां है। बात को लाखों लोगों और लाखों फ्रैंक के बीच उलझाने की बजाय मैं आपको इसे समझाने की कोशिश करुंगा। आइए बात करें एक व्यक्ति और एक हजार फ्रैंक की।

हम यहां एक गांव 'अ' में हैं। सेना में भर्ती करने वालों ने गांव का दौरा करके एक व्यक्ति को सेना में भर्ती कर लिया। इसी दौरान कर जमा करने वालों ने भी गांव का दौरा करके एक हजार फ्रैंक जमा कर लिए। यह व्यक्ति और वह पैसा मेट्ज ले जाया गया, यानी एक व्यक्ति जो कई लोगों को फायदा पहुंचाएगा एक साल तक बिना कुछ किए रखा गया। अगर आप केवल मेट्ज को देखेंगे, तो आपकी यह सोच सही होगी कि यह प्रक्रिया बहुत फायदेमंद है। लेकिन अगर आप गांव 'अ' की तरफ देखें, तो आपकी सोच बदल जाएगी, क्योंकि अगर आप अंधे नहीं हैं तो आप देखेंगे कि गांव ने काम करने वाला एक शख्स गंवा दिया है और वह एक हजार फ्रैंक भी जो उसे उसके काम के मिलते। और वह कारोबार भी प्रभावित हुआ जिस पर वह यह एक हजार फ्रैंक खर्च करता।

एक नजर में तो ऐसा ही लगता है कि इस नुकसान की भरपाई की जा रही है। गांव में जो हुआ वही अब मेट्ज में भी हुआ और बस यही फर्क है। लेकिन यहीं पर नुकसान हुआ है। गांव में काम करके कमा रहा व्यक्ति श्रमिक था, मेट्ज में वह 'सही ड्रेस' और 'गलत ड्रेस' से गुजरकर एक सैनिक बन जाता है। दोनों ही मामलों में पैसा भी वही है और उसका खर्च भी वही लेकिन वहां गांव में काम के 300 दिन कमाई के होते थे, लेकिन दूसरे मामले में कमाई के 300 दिन बिना किसी उत्पादन के हैं। महज इस कल्पना के आधार पर कि सेना का एक हिस्सा सुरक्षा के लिए अपरिहार्य नहीं होता।

अब बात कार्यमुक्ति (डिमोबिलाइजेशन) की। आप मुझे बताते हैं कि लाखों श्रमिकों का इजाफा हुआ, प्रतिस्पर्धा भी बढ़ी और इसका वेतन दर पर असर भी पड़ा। यह वो है जो आप देखते हैं।

लेकिन ऐसा भी कुछ है जो आप नहीं देखते। आप यह नहीं देखते कि लाखों सैनिकों को काम से आजाद करना करदाताओं को उनके लाखों फ्रैंक लौटाने की तरह है। आप यह नहीं देखते कि ऐसे कदम से आप बाजार को लाखों श्रमिक वापस दे रहे हैं जिन्हें उनके काम के लिए लाखों फ्रैंक का भुगतान किया जाएगा। परिणाम यह होगा कि श्रमिकों की आपूर्ति के साथ ही मांग में भी इजाफा होगा। जिससे यह निष्कर्ष निकलेगा कि वेतन कम करने की आपकी सोच महज हवाई ही रह जाएगी। आप न तो पहले और न ही बाद में यह देख पाते हैं कि यहां बात लाखों लोगों और लाखों फ्रैंक की भी है। पहले आप लाखों लोगों को कुछ नहीं करने के लिए लाखों फ्रैंक दे रहे थे और अब यह पैसा उनको काम करने के लिए दिया जा

रहा है। सबसे अंत में, आप यह भी नहीं देखते कि जब करदाता पैसा देता है, भले एक सैनिक को बदले में कुछ नहीं मिलने के लिए या एक श्रमिक को बदले में किसी बात के लिए, पैसे के लेनदेन का पूरा चक्र एक जैसा ही है, फर्क है तो केवल इतना कि दूसरे मामले में करदाता को वापसी में भी कुछ मिलता है। पहले मामले में उसे कुछ नहीं मिलता। परिणाम- देश के लिए एक भारी नुकसान।

यहां मैं जिस मिथ्या तर्क पर प्रहार कर रहा हूं, वह हर सिद्धांत के मूल में रहने वाले विस्तारित प्रयोग की परीक्षा में कामयाब नहीं हो सकता। तमाम बातों पर गौर करने के बाद अगर सेना का आकार बढ़ाने से देश को फायदा है, तो फिर देश की पूरी आबादी को ही सेना में भर्ती होने के लिए क्यों नहीं प्रोत्साहित किया जाता?

**3. कर**

या आपने कभी किसी को कहते हुए सुना है, 'कर सर्वश्रेष्ठ निवेश हैं, वह जिंदगी देने वाली ओस है। देखिए ये कर कितने सारे परिवारों को जिंदा रखने में मदद करते हैं, और कल्पना में उद्योग को होने वाले फायदे को भी देखिए, वे तो अनगिनत हैं। जिंदगी की तरह अंतहीन।'

इस मत से संघर्ष के लिए मैं आगे अपना खंडन दोहरा रहा हूं। राजनीतिक अर्थशास्त्र इस बात को जानता है कि उसके तर्क हर एक को इतना कुछ नहीं दे रहे हैं कि वह कहे- रिपीतिता प्लेसेंट, यानि कृपया फिर दोहराएं। इसलिए बासिल [*नाटक द बार्बर ऑफ सेविल में बासिल नाम का संगीतज्ञ कहता है, 'मैंने कुछ कहावतें कुछ बदलाव के साथ शामिल की हैं।'*] की तरह राजनीतिक अर्थशास्त्र ने भी कहावत को अपने हिसाब से 'जमा' लिया है और उसे यह यकीन सा हो गया है कि उसके मुंह से *रिपीतिता डोसेंट* (यानि दोहराव सिखाता है) ही निकलेगा।

अपने वेतन से सरकारी अधिकारियों को मिलने वाला लाभ, वो है जो देखा जाता है। उन्हें आपूर्ति की जाने वाली बातों से होने वाला फायदा देखा जाता है। ये सब ठीक आपकी नाक के नीचे है।

लेकिन वे नुकसानदेह बातें जिनसे करदाता अपना पिंड छुड़ाना चाहता है, वह बात है जो देखी नहीं जाती। और उनसे कमाई करने वाले व्यापारियों पर पड़ने वाला बोझ वो और बात है जो देखी नहीं जाती। हालांकि एक आम बुद्धिमानी भरे नजरिये से भी यह बात दिखाई देनी चाहिए।

जब एक सरकारी अधिकारी अपनी जेब से 100 सोस (तत्कालीन फ्रेंच मुद्रा) खर्च करता है तो इसका मतलब होता है करदाता अपनी ओर से 100 सोस कम खर्च करता है। लेकिन

सरकारी अधिकारी द्वारा किया जा रहा खर्च दिखता है क्योंकि यह किया जा रहा है, लेकिन करदाता का खर्च नहीं दिखता, क्योंकि, अफ़सोस, उसे ऐसा दिखने वाला खर्च करने से रोका जा रहा है।

आप एक देश की तुलना जमीन के एक टुकड़े से और कर की जीवन देने वाली बारिश से कीजिए। लेकिन आपको यह सवाल भी पूछना चाहिए कि यह बारिश आ कहां से रही है। और क्या यह कर ही नहीं है जो जमीन से नमी को खींचकर उसको सूखा कर रहा है।

आपको यह सवाल भी पूछना चाहिए कि क्या यह जमीन बारिश से जितना पानी पा रही है, उससे कहीं ज्यादा वाष्पीकरण में उड़ तो नहीं जा रहा?

एक बात तो तय है, जब जेम्स गुडफेलो कर संग्राहक को 100 सोस देता है तो बदले में उसे कुछ भी नहीं मिलता। जब कोई सरकारी अधिकारी इस 100 सोस को खर्च करते हुए गुडफेलो को कुछ देता है तो यह गेहूं या उसके श्रम की कीमत का होता है। इसका अंतिम परिणाम जेम्स गुडफेलो को पांच फ्रैंक का नुकसान ही है।

यह सही है कि हमेशा, लगभग हर बार ही, सरकारी अधिकारी जेम्स गुडफेलो के साथ ऐसा ही करता है। इस मामले में दोनों ही पक्षों को कोई नुकसान नहीं है, यह तो एक किस्म का विनिमय है। ऐसे में मेरे तर्क का ताल्लुक किसी उपयोगी काम से नहीं होता। इसलिए मेरा तर्क यह है कि अगर आपको कोई सरकारी दफ्तर खोलना है, तो पहले उसकी उपयोगिता साबित करें। जेम्स गुडफेलो को यह बात साबित करके बताएं कि उसे जो सेवाएं दी जा रही हैं, वह उससे वसूली जा रही कीमत के बराबर है। लेकिन इस अंतर्भूत (इंट्रिसिक) उपयोगिता के इतर, इस नये दफ्तर खोलने के अधिकारी, उसके परिवार और उन्हें सामान की आपूर्ति करने वालों को होने वाले फायदों को न गिनाएं। यह तर्क भी न दें कि इससे रोजगार को प्रोत्साहन मिलेगा।

जब जेम्स गुडफेलो एक वाकई उपयोगी सेवा के लिए सरकारी अधिकारी को 100 सोस देता है तो यह ठीक वैसा ही है जब वह किसी जूते बनाने वाले को जूतों के लिए 100 सोस दे रहा हो। यह एक लेन-देन का मामला है, जूते बनाने वाले को जूते के बदले 100 सोस। लेकिन जब जेम्स गुडफेलो किसी सरकारी अधिकारी को बिना किसी सेवा के या परेशानी में पड़कर 100 सोस देता है तो यह किसी चोर को पैसे देने की तरह ही है। इस बात में कोई दम नहीं है कि यह सरकारी अधिकारी इस पैसे का हमारे राष्ट्रीय उद्योग के भले के लिए इस्तेमाल करेगा या यह चोर के काम आएगा। जेम्स गुडफेलो ने इससे ज्यादा योगदान दिया होता अगर कानूनी या गैरकानूनी परजीवी उसकी राह में नहीं आया होता।

इसलिए अब हम किसी बात का निर्णय केवल जो देखा जाता है, की बजाय जो देखा नहीं जाता है से ही करने की आदत सी डाल लें।

पिछले साल मैं वित्त कमेटी में था क्योंकि संविधान सभा (कांस्टिट्यूएंट असेंबली) की विभिन्न कमेटियों से विपक्षियों को सुनियोजित तरीके से नहीं निकाला जा रहा था। इस मामले में संविधान के निर्माताओं ने काफी समझदारी से काम लिया था। हमने एम. थियर्स [*एडॉल्फ थियर्स (1797-1877), फ्रांसीसी राजनयिक और प्रख्यात इतिहासकार। अपने लंबे करियर के दौरान वे डेपुटी और प्रधानमंत्री (1836 -1840) भी रहे। उनके योगदान को देखते हुए अंततः उन्हें 1871 में थर्ड रिपब्लिक का प्रेसिडेंट बनने का मौका भी मिला*] को यह कहते सुना, 'मैंने अपनी पूरी उम्र लेजिटिमिस्ट पार्टी और लेरिकल पार्टी के लोगों के साथ झगड़ते हुए गुजारी है। एक समान खतरे से लड़ते हुए हमने कई बार दिल खोलकर बात भी की और मैंने पाया कि वे दैत्यों की तरह नहीं थे, जैसा कि मैं सोचता था।'

हां, आपस में मेलजोल नहीं रखने वाली पार्टियों में रंजिश चरम तक पहुंच जाती है और नफरत भी। अगर बहुमत वाली पार्टी विपक्ष के कुछ सदस्यों को विभिन्न कमेटियों में स्थान दे तो शायद यह देखने को मिले कि दोनों को इस बात का अहसास हो जाए कि उनके विचारों में बहुत ज्यादा अंतर नहीं है। साथ ही यह भी समझ आएगा कि उनके विचार उतने विकारपूर्ण (परवर्स) भी नहीं हैं, जितना कि सोचा जाता था।

खैर जो भी हो, पिछले साल मैं वित्त कमेटी में था। हर बार हमारा एक साथी जब गणतंत्र के राष्ट्रपति, कैबिनेट मंत्रियों और राजदूतों का वेतन निश्चित करने की बात कहता तो उसे बताया जाताः ' सेवा (सर्विस) के लिहाज से कुछ दफ्तरों को प्रतिष्ठा और गरिमा के आवरण में रखना ही बेहतर होगा। यही अच्छे लोगों को आकर्षित करने का तरीका है। अनगिनत अभागे लोग मदद के लिए राष्ट्रपति से गुहार लगाते हैं और यह वाकई उनके लिए दुखदाई होगा अगर उन्हें हर बार उनकी मदद से इनकार करना पड़े। मंत्रियों और राजनयिकों के इर्द-गिर्द थोड़ा बहुत दिखावा तो संवैधानिक सरकार के तंत्र का ही हिस्सा है, आदि, आदि।'

ऐसे तर्कों से भले ही विवाद की स्थिति बनाई जा सकती हो, लेकिन उनकी गहराई से छानबीन करना जरूरी है। वे जनहित पर आधारित होते हैं, फिर भले ही वो गलत हों या सही। निजी तौर पर भी मैं ऐसे मामलों को कंजूसी और ईर्ष्या के चलते लिए गए कई निर्णयों से ज्यादा अच्छी तरह से उठा सकता हूं।

लेकिन एक अर्थशास्त्री के तौर पर मेरे विवेक को जिस बात से सबसे ज्यादा धक्का लगता है, या जो मुझे अपने देश की बौद्धिकता को लेकर शर्म से लाल कर देता है जब वो इस तर्क के बाद और तर्क (जिसमें वे कभी नहीं चूकते) दिए चले जाते हैं: 'यह सरकारी अधिकारियों

की विलासिता के अलावा कला, उद्योग और रोजगार को भी प्रोत्साहन देता है। राष्ट्रप्रमुख या उनके मंत्री भोज और पार्टियां बिना समूचे तंत्र में प्राण फूंके नहीं दे सकते। उनके वेतन कम करने का मतलब होगा पेरिस के उद्योग को भूखा मारना और ऐसा ही पूरे देश में करना।'

भगवान के लिए, भद्रजनों, कम से कम गणित का तो सम्मान करो। फ्रांस की नेशनल असेंबली के सामने आकर यह मत कहो, क्योंकि डर है कि शर्मिंदगी भरा यह कदम आपके पक्ष में नहीं होगा। यह न कहें कि किसी राशि का जोड़ इस बात से बदल सकता है कि यह नीचे से ऊपर जोड़ी गई है या फिर ऊपर से नीचे।

तो फिर अगर मान लीजिए कि मैंने 100 सोस देकर अपने खेत में खुदाई के लिए एक मशीन का इंतजाम कर लिया। जैसे ही मैं यह अनुबंध करता हूं, कर संग्राहक मुझसे 100 सोस लेकर उसे गृहमंत्री को दे देता है। मेरा अनुबंध पैसे के अभाव में टूट जाता है, लेकिन मंत्री के भोज में एक और व्यंजन का तो इंतजाम हो जाएगा। आप किस आधार पर यह कहने की हिम्मत रखते हैं कि इस आधिकारिक खर्च ने उद्योग को लाभ पहुंचाया? क्या आप देख नहीं सकते कि यह खपत (कंजम्पशन) और श्रम का एक सामान्य सा हस्तांतरण है? यह सच है कि एक कैबिनेट मंत्री का भोजन का टेबल और अधिक खर्च से सजाया गया, लेकिन यह भी सच है कि एक किसान का खेत जस का तस रहा। पेरिस के एक कैटरर की जेब में 100 सोस आ गए, लेकिन मुझे यकीन है कि एक स्थानीय गड्ढा खोदने वाले को पांच सोस का नुकसान हो गया। मैं केवल इतना ही कह सकता हूं कि आधिकारिक व्यंजन और संतुष्ट कैटरर तो वो हैं जो देखे जाते हैं, दलदली खेत और खुदाई करने वाला बेरोजगार देखे नहीं जाते।

हे भगवान! राजनीतिक अर्थशास्त्र में दो और दो चार होते हैं, यह बताने के लिए भी कितने पापड़ बेलने पड़ते हैं। और अगर आप ऐसा करने में कामयाब हो जाते हैं तो लोग चीखने लगते हैं, 'यह कितना साफ और ऊबाऊ है।' फिर वो अपने वोट का ऐसे प्रयोग करते हैं मानो आपने कभी कुछ भी साबित ही नहीं किया।

### 4. थिएटर्स और फाइन आर्ट्स

क्या सरकार को कला क्षेत्र को भी अनुदान देना चाहिए?

इस मामले के पक्ष और विपक्ष में कहने के लिए काफी कुछ है।

अनुदान के तंत्र के पक्ष में कहा जा सकता है कि कला किसी भी देश की आत्मा का विस्तार करती है, उत्थान करती है और महाकाव्य सा रूप देती है। कला लोगों को उनके रोजमर्रा के भौतिकवाद के कामों से परे ले जाकर, उन्हें एक देश की व्यवहार, परंपरा, नैतिकता

और यहां तक की उद्योगों को लेकर एक अच्छी अनुभूति का अहसास कराती है। यह सवाल भी पूछा जा सकता है कि अगर थिएटर इतालियां और कन्जर्वेटरी न होते तो फ्रांस के संगीत का पता नहीं क्या होता। थिएटर फ्रैंकाइस के बगैर नाट्यकला और हमारे संग्रह और म्यूजियम के बगैर चित्र और शिल्पकला के क्या होता। कुछ लोग तो यहां तक कह सकते हैं कि अगर लोगों में कला के केंद्रीयकरण और अनुदानों के जरिये उसके प्रति अभिरूचि को प्रोत्साहित नहीं किया जाता तो क्या दुनिया में फ्रांस के श्रमिक के काम की इतनी कदर होती। ऐसे परिणाम सामने होते हुए क्या यह बेहद अविवेकपूर्ण नहीं होता अगर हम इस संयत आंकलन को सभी नागरिकों पर लागू नहीं करते। वे परिणाम जिन्होंने उन्हें इतनी ख्याति और यूरोप की आंख का तारा बना रखा है।

इन कारणों और ऐसे ही अन्य कई को, जिनकी ताकत को मैं चुनौती नहीं दे सकता, विरोधी तर्कों के सहारे गलत भी साबित कर सकते हैं। इनमें से सबसे पहला है, जिसे हम समान न्याय कह सकते हैं। क्या लेजिस्लेटर का अधिकार क्षेत्र इतना व्यापक है कि वह किसी कलाकार को मदद करने के लिए किसी कारीगर के वेतन में से कटौती करे?

एम. डी लामार्टिन [*अल्फोंस मैरी लुईस डी लामार्टिन (1790 -1869), फ्रांस के रूमानी कवि और साथ ही एक प्रतिष्ठित राजनयिक। 1834 में डिप्टी चुने गए लामार्टिन ने सर्वाधिक ख्याति 1848 की क्रांति में हासिल की थी, जब गणतंत्र की स्थापना के आंदोलन में वे अग्रणी लोगों में थे। अपनी वाकपटुता से उन्होंने पेरिस को तबाह करने पर उतारू लोगों को नियंत्रित किया था। बाद में वे प्रांतीय सरकार के प्रमुख भी बने। वे एक व्यावहारिक राजनीतिज्ञ से ज्यादा एक आदर्शवादी और वक्ता थे। लेकिन जल्द ही उनका प्रभाव कम होता चला गया और 1851 में उन्होंने राजनीति को अलविदा कह दिया।*] का कहना था, 'अगर आप किसी थिएटर का अनुदान वापस ले लेते हैं, तो आप फिर इस राह पर कब जाकर थमेंगे। और क्या यह तर्कसंगत नहीं होगा कि फिर आप विश्वविद्यालय की फैकल्टियों, अपने म्युजियमों, संस्थाओं और लाइब्रेरियों के साथ भी ऐसा ही करें?' इसका जवाब इस बात से दिया जा सकता हैः अगर आप उन सब बातों को रियायत देना चाहते हैं जो अच्छी और उपयोगी है, तो आप इस राह पर कब जाकर रूकेंगे? और तब क्या आपकी सूची में कृषि, उद्योग, कारोबार, कल्याण और शिक्षा भी नहीं होंगे? यह भी कि क्या यह तय है कि अनुदान से कला का भला होगा? यह एक ऐसा सवाल है जिसका हल फिलहाल तो दिखाई नहीं देता और हम अपनी आंखों से देख सकते हैं कि वही थिएटर फलते-फूलते हैं जो लाभ कमा रहे हैं। अंततः अगर हम थोड़ा ऊपर उठकर विचार करें तो देखा जा सकता है कि आवश्यकता और इच्छा, दोनों ही एक-दूसरे को बढ़ावा देती हैं और वंचित इलाकों में यह राष्ट्रीय संपदा में इजाफे के अनुपात में ही उस हद

तक पहुंच जाते हैं जहां संतोष मिले। तो क्या बेहतर नहीं होगा कि सरकार इसमें दखल ना दे। क्योंकि राष्ट्रीय संपदा चाहे जितनी हो, ऐसा हो नहीं सकता कि करों की मदद से विलासिता के उद्योग को बढ़ावा मिले और उससे मूलभूत तौर पर अनिवार्य उद्योग प्रभावित न हों। इस तरह से यह सभ्यता की स्वाभाविक तरक्की पर विपरीत असर डालेगा। एक और बात पर ध्यान दिलाने की जरूरत है कि जरूरतों, विकल्प, श्रम और आबादी के कृत्रिम विस्थापन से कोई भी देश एक अनिश्चित और खतरनाक स्थिति में पहुंच जाता है, जिसका कोई ठोस आधार नहीं होता।

यह सरकारी हस्तक्षेप के विरोधियों द्वारा दिए गए तर्क हैं, हस्तक्षेप का वह आदेश जिसमें लोग यह महसूस करते हैं कि उनको अपना काम इसी तरह से करना चाहिए जो उनकी जरूरतों और आकांक्षाओं को पूरा करे। मैं यह स्वीकारता हूं कि मैं उन लोगों में से हूं, जो यह मानते हैं कि विकल्प और प्रेरणा नीचे से आनी चाहिए ऊपर से थोपी नहीं जानी चाहिए। नागरिकों से आना चाहिए न कि लेजिस्लेटर्स से। मेरी निजी राय में इसका विरोधी मत स्वतंत्रता और इंसान की गरिमा को तबाह कर देता है।

लेकिन, एक ऐसे हस्तक्षेप से, जो गलत भी है और अनुचित भी, क्या आप जानते हैं अर्थशास्त्रियों को किस बात के लिए दोषी करार दिया जा रहा है? जब हम अनुदानों और रियायतों का विरोध करते हैं तो हमें उस बात का ही विरोधी करार दे दिया जाता है जिसके लिए यह अनुदान या रियायत दी जा रही है। हम हर तरह की गतिविधि के विरोधी मान लिए जाते हैं क्योंकि हम चाहते हैं कि यह स्वैच्छिक हो और उनका उचित प्रतिफल भी मिले।

इसलिए अगर हम चाहते हैं कि सरकार करों के जरिये धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप न करे, तो हमें नास्तिक करार दे दिया जाता है। अगर हम सरकार से शिक्षा के क्षेत्र में करों के सहारे हस्तक्षेप न करने को कहते हैं, तो हमें शिक्षा के प्रसार का विरोधी बता दिया जाता है। अगर हम कहते हैं कि सरकार को करों के सहारे किसी जमीन या उद्योग का कृत्रिम मूल्य तय नहीं करना चाहिए तो हमें संपत्ति और श्रमिक विरोधी ठहराया जाता है। अगर हम सोचते हैं कि सरकार को कलाकारों को अनुदान नहीं देना चाहिए तो हमारी तुलना ऐसे गंवारों से की जाती है, जो कला को निरर्थक मानते हैं।

मैं अपनी पूरी ताकत लगाकर इन हस्तक्षेपों का विरोध करता हूं। धर्म, शिक्षा, जायदाद, श्रम और कला को समाप्त करने की सोच की बजाय जब हम ऐसी हर गतिविधि को एक-दूसरे पर खर्च लादकर स्वैच्छिक करने की बात करते हैं तो हमारा मकसद होता है कि समाज में ये सभी ताकतें एक साथ और स्वतंत्रता के माहौल में फले-फूलें और आज की तरह क्लेश, गाली-गलौच, निरंकुशता और हुल्लड़बाजी का कारण न बनें।

हमारे विरोधियों का मानना है कि हर वो गतिविधि जिसे अनुदान नहीं दिया जाता और जिसका नियमन नहीं किया जाता, समाप्त हो जाती है। हम इसके ठीक विपरीत सोचते हैं। उनका यकीन लेजिस्लेटरों में है, मानवजाति में नहीं। हमारा यकीन मानवजाति में है, इन लेजिस्लेटरों में नहीं।

इस तरह से एम. डी लामार्टिन कहते हैं, ' इस सिद्धांत के आधार पर हमें उन तमाम सार्वजनिक व्याख्याओं (पब्लिक एक्सपोजिशन) को समाप्त करना होगा जो देश के लिए संपत्ति और गौरव लाती हैं।'

मेरा एम.डी लामार्टिन को जवाब हैः आपके नजरिये से अनुदान नहीं देना किसी बात को खत्म कर देना है, आगे चलकर इसी बात पर सहायक तर्क हो सकता है कि सरकार के बगैर कुछ भी नहीं हो सकता। आपका यह भी निष्कर्ष रहा कि हर वो चीज जीवित ही नहीं रह सकती जिसे करों की मदद से जिंदा रखा गया है। लेकिन मैं आपकी बात को आपके ही दिए उदाहरण से गलत साबित करना चाहूंगा। मैं आपका ध्यान दिलाना चाहूंगा कि सभी व्याख्याओं से महानतम, कुलीनतम जो सबसे ज्यादा स्वतंत्र सोच पर आधारित है, पूरी दुनिया में मान्य और मैं यहां 'मानवीय' शब्द का भी इस्तेमाल करना चाहूंगा, जो अतिरंजना नहीं होगी, इन दिनों लंदन [*यहां लंदन के हाइड पार्क में 1851 में लंदन सोसायटी ऑफ आर्ट्स के तत्वावधान में हो रही ग्रेट एक्जिबिशन का जिक्र है। इसका उद्देश्य कला और उद्योगों का विकास करना था। यह बड़ी अंतरराष्ट्रीय प्रदर्शनियों या 'वर्ल्ड फेयर्स' में से एक थी और यह वास्तुकला के एक अद्भुत नमूने क्रिस्टल पैलेस के लिए सराही गई थी, जिसमें प्रदर्शनी लगाई गई थी। महारानी विटोरिया के पति अल्बर्ट ने इसकी अध्यक्षता की थी।*] में तैयार की जा रही है। इकलौती ऐसी व्याख्या जिसमें न तो कोई सरकारी हस्तक्षेप है और न ही करों का कोई आधार।

ललित कला की और लौटते हुए मैं दोहराना चाहूंगा कि अनुदान के तंत्र के समर्थन और विपक्ष में भारी-भरकम तर्क दिए जा सकते हैं। पाठक इस बात को समझ सकता है कि इस निबंध के विशेष मकसद के चलते मुझे न तो इन तर्कों में से किसी को देने की जरूरत है और न ही दोनों में से किसी पर फैसला करना है।

लेकिन एम.डी लामार्टिन ने एक तर्क दिया है, जिस पर मैं चुप नहीं बैठ सकता, क्योंकि यह इस आर्थिक अध्ययन के सुस्पष्ट दायरे के भीतर ही है। उन्होंने कहा हैः

थिएटर के मामलों में आर्थिक उपयोगिता का एक शब्द में जवाब है रोजगार। रोजगार की प्रकृति क्या है इस बात का कोई महत्व नहीं है, यह हर अन्य रोजगार की तरह ही उत्पादकता वाला और उर्वर है। जैसा कि आप जानते हैं थिएटर वेतन के ही जरिये पेंटर,

बढ़ई, सजावट करने वालों, कॉस्ट्यूम बनाने वालों और स्टेज बनाने वाले वास्तुविदों जैसे तकरीबन 80 हजार लोगों की मदद करते हैं। ये इस राजधानी (पेरिस) की जान और मूल उद्योग है। वे आपकी सहानुभूतियों के हकदार हैं!

आपकी सहानुभूतियां? या आपके अनुदान।

और आगे यह भीः

पेरिस के मनोरंजन उद्योग से रोजगार मिलता है और बड़े-बड़े प्रांतीय विभागों को उपभोक्ता सामग्री भी, रईसों की विलासितापूर्ण जीवनशैली से हर तरह के तकरीबन दो लाख लोगों को रोजी-रोटी मिलती है। इनका गुजारा थिएटरों के जटिल उद्योग से भी चलता है। बड़े लोगों के इस आनंद से पूरे गणतंत्र को मदद मिलती है। इससे पूरे फ्रांस को गौरव की अनुभूति होती है और इन लोगों के बच्चों और परिवारों को रोजी-रोटी भी मिलती है। इन्हीं लोगों को आप यह 60 हजार फ्रैंक दे रहे हैं (बहुत अच्छे! बहुत अच्छे! ढेर सारी तालियां)।

जहां तक मेरी बात है मुझे यह कहना ही पड़ेगाः बहुत खराब! बहुत खराब! निश्चित तौर पर इस बारे में फैसले को अपने आर्थिक तर्क के दायरे पर छोड़ते हुए।

हां यह कुछ लिहाज से ठीक है, यहां जिन 60 हजार फ्रैंक की बात हो रही है, उसमें से कुछ थिएटर से जुड़े लोगों को मिलेंगे। कुछ फ्रैंक रास्ते में ही गुम हो जाएंगे। अगर मामले का बारीकी से निरीक्षण करेंगे तो यह भी देखने को मिल सकता है कि इसमें से अधिकांश पैसा तो कहीं और ही चला गया। काम करने वाले भाग्यशाली होंगे अगर उन तक चंद टुकड़े पहुंच जाएं। लेकिन मैं यह मानना चाहूंगा कि अनुदान का सारा पैसा पेंटरों, सजावट का कम करने वालों, कॉस्ट्यूमर्स, हेयरड्रेसर आदि तक पहुंचा। यह वो है जो देखा जाता है।

लेकिन यह आता कहां से है? यह सिक्के का दूसरा पहलू है। उतना ही महत्वपूर्ण जितना कि पहला पहलू। इन 60 हजार फ्रैंक का स्रोत क्या है? और वो कहां जाते अगर एक लेजिस्लेटिव वोट ने उन्हें पहले र्‌यू डी रिवाली और फिर वहां से र्‌यू डी ग्रेनेले का रास्ता न दिखाया होता? [*यानी, सिटी हॉल से थिएटरों के लिए माल की आपूर्ति करने वाले बाएं तट तक।*] यह वो है जो देखा नहीं जाता।

निश्चित तौर पर कोई भी यह कहने की हिम्मत नहीं जुटा पाएगा कि लेजिस्लेटर के वोट ने ही यह राशि मतपेटी के जरिये निकाल ली, बल्कि यही कहेगा कि यह तो राष्ट्रीय संपदा में इजाफा था। इस चमत्कारी वोट के अभाव में तो यह 60 हजार फ्रैंक देखे ही नहीं जाते और अछूते रहते। यह मानना ही पड़ेगा कि बहुमत केवल यही फैसला कर सकता है कि उनको कहां से कहां ले जाया जाएगा और वह एक स्थान पर दूसरे स्थान का रास्ता छोड़ देने से ही पहुंच सकते हैं।

मामला यही होने के कारण यह बात तो साफ है कि करदाता का जो एक फ्रैंक कर में चला गया है वह उसे कहीं ओर खर्च नहीं कर पाएगा। यह भी जाहिर है कि अब वह उस एक फ्रैंक का लुत्फ नहीं उठा पाएगा और वह श्रमिक या कारीगर भी नहीं जिससे कुछ खरीदने के लिए यह एक फ्रैंक करदाता द्वारा इस्तेमाल किया जाता। उन्हें भी इस एक फ्रैंक की कमाई से वंचित होना पड़ेगा।

इसलिए इस बचकाना दृष्टिकोण को मानने की कोई जरूरत नहीं है कि 16 मई को दिए गए उस खास वोट ने देश की खुशहाली या फिर रोजगार में कोई योगदान दिया है। इसने तो एक काम को दूसरे को सौंप दिया है और पारिश्रमिक का भी विस्थापन हुआ, बस इतना ही।

क्या यह कहा जाएगा कि एक तरह की संतुष्टि और एक तरह के रोजगार की ज्यादा तर्कसंगत, ज्यादा आवश्यक, ज्यादा नैतिक दूसरी तरह की संतुष्टि और दूसरे तरह के रोजगार के लिए बलि दी जा सकती है? मैं यहां भी लड़ सकता हूं। मैं कह सकता हूं: करदाता से 60 हजार फ्रैंक लेकर आपने हल चलाने वाले, गड्ढे खोदने वाले, बढ़ई, लुहार का वेतन तो कम कर दिया और एक गायक, हेयरड्रेसर, सजावट करने वालों, कॉस्ट्यूम निर्माता का उतना वेतन बढ़ा दिया।

ऐसा कोई भी तथ्य मौजूद नहीं है जो यह बता सके कि दूसरा गर्व पहले से श्रेष्ठ है। एम. डी लामार्टिन यह आरोप नहीं लगाते। वह खुद ही कहते हैं कि थिएटर का काम उतना ही उत्पादक, उतना ही फलदायी है और किसी भी काम की तुलना में। इसे चुनौती दी जा सकती है क्योंकि थिएटर का काम अन्य काम की तरह उत्पादक नहीं होने का इससे बेहतर सबूत क्या होगा कि उसे अनुदान देने के लिए करों की वसूली किसान से की जाती है।

लेकिन यह किसी काम की अंतर्भूत कीमत और कारगरता के अंतर की तुलना मेरे काम का मकसद नहीं है। मैं तो यहां केवल इतना ही बताना चाहता हूं कि अगर एम. डी लामार्टिन और वे अन्य जिन्होंने उनके प्रस्ताव पर तालियां बजाई हैं, यह तो देखा कि उन लोगों की कमाई हो रही है जो थिएटर को सामान की आपूर्ति करते हैं, लेकिन उनको उनकी ओर भी नजर डालना चाहिए जो करदाता को सामान की आपूर्ति करते हैं। अगर करदाता के पास पैसा कम होता है तो इसका सीधा असर उसे माल की आपूर्ति करने वाले लोगों की जीविका पर पड़ेगा। तर्कपूर्ण तो यही होगा कि उन लोगों को भी अनुदान या आर्थिक मदद दी जाए। और अगर उनके तर्क पुख्ता है तो यह अनगिनत अनुदान देने होंगे, क्योंकि जो बात एक फ्रैंक और 60 हजार फ्रैंक के मामले में सही है तो वह वैसी ही परिस्थितियों में एक अरब फ्रैंक के लिए भी सही होगी।

जब बात कर की हो तो ये भद्रजन कुछ पुख्ता आधार वाले कारण गिनाकर इनकी उपयोगिता को साबित कर देते हैं। लेकिन इस शोकपूर्ण कथन के साथ नहीं, 'राजकीय व्यय श्रमिक वर्ग को जिंदा रखता है।' यह इस तथ्य को छिपाने की गलती करता है कि यह जानना जरूरी हैः राजकीय व्यय हमेशा से ही निजी व्यय का विकल्प रहा है। यह हो सकता है कि एक श्रमिक की जगह दूसरे श्रमिक को मदद कर दे, लेकिन जहां तक बात पूरे श्रमिक वर्ग की हो तो ऐसा नहीं होता। आपका तर्क व्यावहारिक तो है, लेकिन बेतुका भी, क्योंकि जो तर्क दियागया है वह सही नहीं है।

**5. लोक निर्माण कार्य**

यह स्वाभाविक सा लगता है कि जब सरकार को लगता है कि एक बड़ा उद्यम पूरे समुदाय को भरपूर मदद करेगा, तो ऐसा नागरिकों से ही पैसा इकट्ठा करके किया जाए। मैं स्वीकार करता हूं कि जब लोग इस आर्थिक छलावे के समर्थन में आते हैं तो मेरे सब्र का बांध टूट जाता है, 'साथ ही यह लोगों के लिए रोजगार के अवसर भी पैदा कर रहा है।'

सरकार एक सड़क खोलती है, एक महल बनाती है, एक गली की मरम्मत करती है, एक नहर खोदती है, इस काम से वह कुछ लोगों को रोजगार देती है। यह वो है जो देखा जाता है। लेकिन यह कुछ अन्य काम से श्रमिक कम कर देता है, यह वो है जो नहीं देखा जाता।

मान लीजिए एक सड़क निर्माणाधीन है। हर रोज हजारों श्रमिक काम पर आते हैं और शाम को घर लौट जाते हैं। उन्हें इसके बदले में वेतन मिलता है यह भी तय सा है। अगर सड़क बनाने का काम तय नहीं किया जाता, इसके लिए फंड मंजूर नहीं किए जाते, इन अच्छे लोगों को न तो काम मिलता और न ही वेतन। यह भी तय सा ही है।

लेकिन क्या बात यहीं खत्म हो जाती है? या इस समूची प्रक्रिया में कुछ और शामिल नहीं है? उस वक्त जब एम. इूपिन [*चार्ल्स इूपिन (1784 -873), प्रतिष्ठित फ्रैंच इंजीनियर, अर्थशास्त्री, कंजरवेटरी ऑफ आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स के प्रोफेसर, डिप्टी और सीनेटर। राजनीतिक अर्थशास्त्र में उनका सबसे ज्यादा योगदान आर्थिक सांख्यिकी के क्षेत्र में था।*] ने यह शब्द कहते हैं, ' असेंबली ने मंजूरी दी है, ...'तो क्या लाखों फ्रैंक किसी चमत्कार से चांदनी की एक किरण के साथ एचिल फोल्ड [*एचिल फोल्ड (1800 -1867), राजनीति से जुड़े वित्तीय मददगार।*] और जीन मार्शल बिन्यू [*जीन मार्शल बिन्यू (1805 -1855), इंजीनियर और राजनीतिज्ञ। 1852 में वित्तमंत्री।*] की कब्र तक पहुंच जाते हैं। क्योंकि इस प्रक्रिया को पूरा करने के लिए क्या सरकार को फंड इकट्ठा नहीं करना होगा और उसके खर्च की भी व्यवस्था नहीं करना होगी? क्या उसे कर संग्राहकों को काम पर नहीं लगाना होगा और क्या करदाताओं को अपना योगदान नहीं देना होगा?

तो आइए इस सवाल का दो पहलुओं से विचार करें। यह बात देखते समय कि सरकार इन लाखों फ्रैंक का क्या करने जा रही है, यह देखना भी मत भूले कि इन्हीं लाखों फ्रैंक से करदाता क्या कर सकते थे। तब आप देखेंगे कि सार्वजनिक उपक्रम दो पहलू वाला सिक्का है। एक तरफ तो श्रमिक अपने औजारों के साथ काम में जुटा हुआ है, यह वो है जो दिख रहा है, दूसरी ओर बेरोजगार श्रमिक अपने औजार लिए बैठा है, यह वो है जो देखा नहीं जाता।

इस निबंध में मैं जिस पाखंड पर हमला कर रहा हूं, और अधिक खतरनाक हो जाता है जब इसे सार्वजनिक उपक्रमों पर लागू किया जाता है। क्योंकि यह सबसे बेवकूफाना फिजूलखर्ची को सही साबित करने का प्रयास होता है। जब एक रेलमार्ग या पुल की वास्तविकता में जरूरत होती है, यह इस इसी तथ्य को अपने समर्थन में इस्तेमाल कर लेता है। जब ऐसा नहीं होता, तो कोई क्या कर सकता है? एक व्यक्ति इस घिसे-पिटे लोकप्रिय वाक्य का इस्तेमाल करता है, 'हमें हर हाल में श्रमिकों के लिए रोजगार के अवसर मुहैया कराना चाहिए।'

यानी चैम्पडीमार्स [*सीन नदी के बाएं किनारे पर मूलतः एक परेड का मैदान था, अब चैम्पडीमार्स अब एफिल टॉवर और मिलिटरी अकादमी के बीच में एक पार्क है।*] में पहले टेरेस बनाने का आदेश दिया जाए और फिर उसे गिरा दिया जाए। कहा जाता है कि महान नेपोलियन ने जब गड्ढे खुदवाने के बाद उन्हें भरवा दिया था तो उसे लगा था कि वह परोपकार का कोई काम कर रहा है। उसने यह भी कहा था, 'परिणाम से क्या फर्क पड़ता है? हमें तो बस अपनी समूची संपत्ति को श्रमिक वर्ग में बांट देना है।'

आइए अब बातों के मूल में देखें। पैसा हमारे लिए एक भ्रम पैदा करता है। एक सार्वजनिक उपक्रम में उनसे पैसे के रूप में सहयोग मांगना, वास्तविकता में तो उनसे श्रम की ही अपेक्षा करना है, क्योंकि उनमें से हर एक जो कर देगा वो उसकी मेहनत की कमाई से ही तो देगा। अब अगर हमें सभी नागरिकों को एक जगह पर इकट्ठा करके किसी काम को कराने के लिए उनकी सेवा की मांग करना है, ऐसी सेवा जिससे होने वाला काम सबके लिए फायदेमंद रहेगा, तो यह बात समझ में आती है। उनको इस काम से होने वाले फायदे के रूप में ही उनका मुआवजा मिल जाएगा। लेकिन अगर उनको एकत्रित करने के बाद उनको ऐसे रास्ते बनाने में लगा दिया जिस पर शायद ही कोई प्रवास करे, या ऐसे महल बनवाएं जाएं जिसमें कोई न रहे, केवल उनको काम दिलाने के नाम पर, तो यह बेहूदा लगेगा। और अगर लोग आपत्ति करते हैं कि इस तरह के काम से उनका कोई लेना-देना नहीं है और वो तो अपने लिए काम करेंगे, तो उनकी आपत्ति न्यायसंगत ही है।

नागरिकों का श्रम नहीं पैसे में योगदान लेना, आम परिणाम को नहीं बदलता। लेकिन अगर श्रम को भी बांट दिया जाता तो नुकसान में हर एक की बराबरी की ही भागीदारी होती। जहां पैसे का योगदान लिया जाता है, वहां जिन्हें काम मिलता है उनके नुकसान की तो भरपाई हो जाती है और पहले से ही परेशान लोगों का बोझ और बढ़ जाता है।

संविधान में एक अनुच्छेद है, जिसके अनुसार, 'समाज श्रम के विकास में मदद करता है और उसे प्रोत्साहित भी करता है...सरकार द्वारा विभागों, स्थानीय निकायों (म्युनिसिपालिटियों) के जरिये बेरोजगारों को काम देकर।'

संकट के समय, जैसे जब कड़ाके की सर्दी हो, तो करदाता की मदद से ऐसे तात्कालिक उपायों का अच्छा प्रभाव हो सकता है। यह बीमे की तरह ही काम करता है। यह रोजगार की संख्या में इजाफा नहीं करता और न ही वेतन में, लेकिन यह सामान्य दिनों में एकत्रित किए गए करों का इस्तेमाल संकटकाल में करता है। इसे नुकसान की संज्ञा नहीं दी जा सकती।

एक स्थायी, सर्वसामान्य और व्यवस्थित कदम की तुलना में तो यह कुछ और नहीं बरबाद कर देने वाला धोखा ही है। एक असंभावना, एक विरोधाभास जिसमें जरा सी बात को बहुत महत्वपूर्ण बताकर पेश किया जाता है। यही देखा जाता है। इसमें वह ढेर सारा काम छिपा लिया जाता है, यह देखा नहीं जाता।

### 6. दलाल/बिचौलिया (मिडिलमैन)

समाज ऐसी तमाम सेवाओं का जोड़ सा है जो लोग दूसरे के लिए अनिवार्यता के कारण करते हैं या फिर स्वेच्छा से। इसे ही लोक सेवा और निजी सेवा का नाम दिया जाता है।

पहले (लोक सेवा) को कायदे-कानून से नियंत्रित किया जाता है, जो जरूरत के वक़्त बदलना आसान नहीं होता। वक़्त के साथ भले ही इसकी उपयोगिता समाप्त हो जाए, इसका जनसेवा का तमगा बरकरार रहता है। तब भी यह कुछ और नहीं बस लोगों के लिए कांटे की तरह बन जाए। दूसरा काम स्वेच्छा के दायरे में आता है, यानी यह व्यक्तिगत जिम्मेदारी की तरह होता है। इसमें हर एक व्यक्ति वही देता और लेता जो उसकी इच्छा हो। थोड़े-बहुत मोलभाव के बाद। इन सेवाओं की हर वक्त उपयोगिता मानी जाती है और उनको उनकी तुलनात्मक मूल्यों से ही मापा जाता है।

यही वजह है कि लोकसेवा अधिकांशतया जड़ सी होती हैं, जबकि जनसेवा प्रगति के सिद्धांत को मानती है।

जनसेवाओं का जरूरत से ज्यादा विकास, इसमें बेकार जाने वाली ऊर्जा के साथ समाज में दूसरों पर निर्भरता का दुखद मंजर दिखाता है। यह वाकई हैरत भरा है कि आर्थिक सोच के

कई मॉडर्न स्कूल इस स्थिति स्वैच्छिक निजी सेवा के लक्षण करार देते हैं। इसीलए वो कई उपजीविकाओं के प्रयोजन या उद्देश्य को ही बदलने का प्रयास करते हैं।

इस सोच का समूह अपना हमला बिचौलियों पर केंद्रित रखता है। वे खुशी-खुशी पूंजीपति, बैंकर, सटोरियों, उद्यमी, कारोबारी और व्यापारियों को उत्पादक और उपभोक्ता दोनों से ही लाभ उठाकर बदले में इन दोनों को बदले में कुछ भी न देने वाली उनके बीच की बाधा करार देकर खत्म करने की कोशिश करेंगे। या यूं कहें, सुधारवादी बिचौलियों के काम के तरीके को बदलने की कोशिश करते हैं, क्योंकि इस काम को समाप्त नहीं किया जा सकता।

इस बिंदु पर आकर समाजवादियों का ढकोसला आम आदमी को यह बताता है कि किस तरह से वे सरकार को दी जाने वाली राशि को छिपाकर उसे बिचौलियों को सेवा के लिए दे रहे हैं। फिर एक बार हम आंखों को दिखने वाली बात और केवल दिमाग में आने वाली बात के बीच टकराव का शिकार हो जाते हैं। यानी जो देखा जाता है और जो नहीं देखा जाता है के बीच टकराव।

खासतौर पर 1847 के सूखे [*उत्तरी और पश्चिमी यूरोप में 1845 में दालों और आलू की फसल चौपट होने के कारण 1847 में कीमतों में भारी उछाल देखने को मिला। यह 'डियर ब्रेड' का साल था और कृषि, उद्योग और आर्थिक मामलों में मंदी का दौर।*] में समाजवादियों को अपने विनाशकारी सिद्धांत को लोकप्रिय बनाने का सुनहरा मौका मिल गया। वे जानते थे कि निहायत बेहूदा दुष्प्रचार से भी उस व्यक्ति को प्रभावित करने की उम्मीद होती है, जो मेलसॉंदा फेम्स [*'भूख एक अहितकारी सलाहकार है।' वर्जिल के एनेड छठा।*] से ग्रसित हो।

उसके बाद इंसान द्वारा इंसान का शोषण, गरीबी में सट्टा, एकाधिकार जैसे भारी-भरकम शब्दों के साथ उन्होंने कारोबार नाम को ही गंदा साबित करना शुरू कर दिया और उसके फायदों पर पर्दा डाल दिया।

'क्यों', उन्होंने सवाल किया, 'व्यापारियों को अमेरिका और क्रीमिया से खाद्य सामग्री लाने का काम व्यापारियों के भरोसे छोड़ा जाए?' क्यों नहीं सरकार, विभाग, म्युनिसिपालिटी यह सेवा देने के लिए इन्हें जमा करने के गोदाम बना डाले? ये हर माल को उसे बिना कोई कमीशन काटे मूल कीमत पर बेचेंगे और लोग, गरीब लोग स्वार्थी, निजी और धांधली भरे कारोबार को इन वस्तुओं के लिए बिना बात का पैसा देने से बच जाएंगे।

लोगों को कारोबारियों को एक कर सा देना पड़ता है, यह वह है जो दिखाई देता है। लोगों को सरकार या फिर उसके एजेंटों को कर सा देना पड़ेगा, ये वो है जो दिखाई नहीं देता।

आखिर आम आदमी एक कारोबार को क्या कीमत चुकाता है? यह कुछ ऐसा हैः दो लोग एक-दूसरे को सेवा देते हैं, जो पूरी आज़ादी के साथ प्रतिस्पर्धा के माहौल में दी जाती है और इसमें दोनों के बीच काफी मोलभाव के बाद तय कीमत होती है।

अगर कोई पेरिस में भूखे पेट है और गेहूं ओडेसा में है, तो यह भूख तब तक नहीं मिटेगी, जब तक कि गेहूं उस व्यक्ति के पेट तक नहीं पहुंचता। ऐसा करने के लिए तीन रास्ते हैं: भूखा आदमी खुद जाकर गेहूं की तलाश करे, वह उन लोगों पर यकीन करे जो इस तरह के धंधे में पहले से ही हैं या फिर वह अपना आंकलन कर मामला जनसेवा अधिकारियों के हवाले कर दे।

इन तीनों तरीकों में कौनसा सबसे लाभप्रद है?

हर युग में हर देश में लोग जितने अधिक आजाद, पढ़े-लिखे और ज्यादा अनुभवी होते हैं दूसरे विकल्प को अधिकांशतया ने स्वेच्छा से चुना है। मैं मानता हूं कि मेरी नजर में यही इसे सबसे लाभप्रद बनाता है। मेरा दिमाग इस बात को मानने से इनकार कर रहा है कि ऐसे मुद्दे पर खुद को धोखा दे सकता है, जो उसके दिल के इतना करीब है।[4]

आइए, फिर भी सवाल का बारीकी से निरीक्षण करते हैं।

पेरिस के 3.6 करोड़ लोगों का गेहूं लेने के लिए ओडेसा जाना अव्यावहारिक लगता है। यानी पहला माध्यम किसी काम का नहीं। उपभोक्ता अपने बूते यह काम नहीं कर सकते, उनके पास बिचौलियों, जनसेवा अधिकारियों या व्यापारियों का मुंह ताकने के अलावा और कोई चारा ही नहीं है।

हालांकि देखें तो पहला तरीका ही सबसे स्वाभाविक लगता है। भई जिसे भूख लगी है वह अपने लिए गेहूं का इंतजाम कर ले। यह वह काम है उससे संबंधित है, यह एक ऐसी सेवा है जो उसे अपने लिए करनी ही चाहिए और काम अपने हाथ में ले लेना चाहिए। इस दूसरे व्यक्ति को तो इस काम के ऐवज में मुआवजा दिया जाना चाहिए। मैं यहां यह कहना चाह रहा हूं कि बिचौलिये को अपनी सेवाओं का मेहनताना तो मिलना ही चाहिए।

फिर भी चूंकि हमें वह, यानी कि परजीवी, बनना है जो समाजवादी चाहते हैं, तो दोनों में से कौनसा परजीवी कम कीमत मांग रहा है व्यापारी या फिर जनसेवा अधिकारी?

कारोबार (जो मेरी राय में मुक्त रहना चाहिए, वरना मेरी इतने तर्कों का क्या मायने रह जाता है?) अपने निजी हितों के कारण, मौसम का अध्ययन करता है, हर रोज फसल की स्थिति का आंकलन किया जाता है, दुनिया के हर कोने से रिपोर्ट हासिल करता है, आगामी जरूरतों का अध्ययन करता है, ऐहतियात बरतता है। इसके पास पहले से ही जहाज हैं, सहायक हर कहीं हैं, इसका तात्कालिक निजी हित माल को सस्ते से सस्ते में खरीदना होता

है, इस काम में लगने वाले तमाम खर्च को हद में रखने में और कम से कम प्रयासों से ज्यादा से ज्यादा हासिल करने में होता है। न केवल फ्रांस के व्यापारी बल्कि दुनियाभर के व्यापारी फ्रांस की रोजमर्रा की जरूरतों को पूरा करने में व्यस्त हैं, और अगर निजी हित उनको इस काम को कम खर्च में करने को बाध्य करता है तो उनके बीच की प्रतिस्पर्धा भी उनको दुनिया भर की अर्थव्यवस्थाओं से गुजरने के बाद कुछ लाभ देने को बाध्य कर ही देती है।

एक बार गेहूं आ गया कि व्यापारी का फायदा उसे जल्द से जल्द बेचकर जोखिम की भरपाई में ही होता है। ताकि वह लाभ कमा सके और अगर मौका मिले तो फिर से अगली समूची प्रक्रिया के लिए तैयार हो जाए। मूल्यों की तुलना से मार्गदर्शन हासिल कर निजी उद्यम पूरी दुनिया में खाद्यान्नों का वितरण करते हैं। हमेशा शुरूआत उसी जगह से होती है जहां उसकी कमी हो यानी जहां उसकी ज्यादा जरूरत हो। भूखे लोगों के लिए इससे बेहतर संस्थान की उम्मीद और क्या की जा सकती है। यह एक मुक्त यानी स्वैच्छिक संस्था के जरिये होता है जिसकी कल्पना समाजवादी नहीं कर सकते। यह सही है कि माल की आपूर्ति के लिए उपभोक्ता को व्यापारी को कीमत चुकाना पड़ेगी। जैसे मोलभाव, जहाज से लाने, भंडारण, आढ़त (कमीशन) आदि। लेकिन वह कौनसा तंत्र है जिसमें मालभाड़ा चुकाए बगैर कोई गेहूं हासिल कर सकता है? साथ ही सेवा की कीमत भी देना पड़ती है, यहां पर प्रतिस्पर्धा के कारण बिचौलिए की आढ़त कम हो जाती है। यह एक तरह से न्यायसंगत ही है कि जब पेरिस के कारीगर मार्सेल्स के व्यापारियों के लिए काम नहीं करते तो फिर भला मार्सेल्स के व्यापारियों से पेरिस के कारीगरों के लिए मुफ्त में काम की उम्मीद क्यों की जाए।

अगर समाजवादियों की योजना के मुताबिक, सरकार इस सारे लेन-देन में निजी कारोबारियों की जगह ले लेती है तो क्या होगा? दुआ कीजिए और फिर मुझे बताइए कि क्या यह जनता की अर्थव्यवस्था रह पाएगी। क्या यह फुटकर या खुदरा (रिटेल) मूल्य पर होगी? लेकिन कल्पना कीजिए कि 40 हजार म्युनिसिपालिटी के प्रतिनिधि एक तय दिन पर ओडेसा पहुंच जाएं। उस दिन जब गेहूं की जरूरत हो, क्या आप उसकी कीमत पर पड़ने वाले प्रभाव की कल्पना कर सकते हैं? क्या अर्थतंत्र माल के परिवहन के खर्च से प्रभावित होगा? पर क्या कम जहाज, कम नाविक, मुख्य स्थान तक पहुंचने से पहले बीच में जहाज बदलने पर कम खर्च होगा, गोदाम भी कम लगेंगे? और क्या हम सभी ग्रामीणों को भुगतान की अनिवार्यता से बच जाएंगे? क्या इस बचत का व्यापारी की कमाई पर असर पड़ेगा? क्या हमारे प्रतिनिधि और जनसेवा अधिकारी बिना किसी अपेक्षा के ओडेसा जा रहे हैं? क्या उनकी यह यात्रा महज हमारे लिए बंधुत्व की भावना के कारण है? क्या उनके इस वक़्त की कीमत नहीं चुकानी पड़ेगी?

और क्या आपको नहीं लगता कि यह एक व्यापारी को दिए जाने वाले दो या तीन फीसदी, जिसकी गारंटी देने के लिए वह तैयार है, से हजार गुना ज्यादा नहीं होगा?

और इसके बाद सोचिए इतनी सारी खाद्य सामग्री बांटने के लिए उस पर लादे जाने वाले करों की। उन अन्यायों और अपमानों की भी कल्पना कीजिए जो ऐसे उद्यम से अलग नहीं किए जा सकते। उस जिम्मेदारी के बोझ की कल्पना कीजिए जो सरकार को ढोना पड़ेगा।

इन त्रुटियों का आविष्कार करने वाले समाजवादी जो परेशानी के दिनों में इन्हें लोगों के दिलो-दिमाग में बैठा देते हैं, खुद को 'भविष्य की सोच' वाला कहने तक से नहीं चुकते। इस शाब्दिक इस्तेमाल में ही असली खतरा छिपा हुआ है। भाषा का यह निरंकुश इस्तेमाल इस शब्द और इससे उत्पन्न फैसले दोनों को ही स्थापित कर देगा। ' भविष्य की सोच' वाले कहलाने का मतलब है कि यह लोग भविष्य के बारे में आम आदमी से ज्यादा जानते हैं। यानी उनका इकलौता दोष यही है कि वे अपनी सदी से काफी आगे की सोच रखते हैं। और अगर वो कहते हैं कि कुछ निजी सेवाओं का वक़्त अभी नहीं आया है, जो परजीवी किस्म की हैं, और इन्हें खत्म कर देना चाहिए तो यह आम आदमी का दोष है जो समाजवाद की सोच के लिहाज से काफी पिछड़ा हुआ है। जहां तक मेरे दिमाग और ज्ञान की बात है तो हकीकत इससे ठीक उल्टी है। मैं नहीं जानता कि समाजवादियों की सोच से तुलना के लिए मुझे किस बर्बर सदी में वापसी करनी होगी।

आधुनिक समाजवादियों का धड़ा बिना किसी की परवाह किए वर्तमान समाज में मुक्त संगठनों का विरोध करते हैं। वे इस सच्चाई को नहीं जान पाते कि एक मुक्त समाज ही वास्तव में एक सच्चा संगठन है, उन तमाम संगठनों से बेहतर जो वे अपने तथाकथित उर्वर दिमाग से तैयार करते हैं।

आइए इस बिंदु की इस उदाहरण के साथ व्याख्या करें-

एक आदमी जब सुबह उठकर काम पर जाने के लिए गरम सूट पहनता है तो इसके लिए जमीन के एक टुकड़े को एक विशेष किस्म की वनस्पतियों से तैयार करना पड़ता है, भेड़ें इस चारागाह से भोजन पाती हैं ताकि वह ऊन दे सकें, इस ऊन को कताई-बुनाई के बाद कपड़े में तब्दील करना पड़ता है। इस कपड़े की कताई-सिलाई से कपड़े तैयार होते हैं। कामकाज की यह प्रक्रिया और अधिक कामकाज की एक समूची श्रृंखला को जन्म देती है। इस काम के लिए खेतीबाड़ी, भेड़पालन, ऊन फैक्टरियों, कोयला, मशीन, माल ले जाने के लिए वाहन कितनी बातों का इस्तेमाल करना पड़ता है।

अगर समाज एक वास्तविक संगठन नहीं होता, तो जब किसी को सूट की दरकार होती तो वह अकेला ही इन कामों की पूरी श्रृंखला करने पर मजबूर होता। यानी ऊन से लेकर कपड़ा तैयार करने तक।

लेकिन शुक्र है उस संगठनात्मक भावना का जिससे हमारी इस प्रजाति ने काम के लिहाज से अपनी अलग-अलग पहचान कायम कर ली है। ढेर सारे श्रमिकों के बीच इस काम का बंटवारा कर दिया गया है। वे अपने इस काम को और लोगों के साथ बांटते रहते हैं, तब तक जब तक कि यह बढ़ती मांग और वक्त पर आपूर्ति के साथ एक उद्योग का रूप नहीं ले लेता। इसके बाद हर एक के काम के लिहाज से लाभ के वितरण का वक़्त आता है। अगर यह संगठन नहीं है तो फिर क्या है मैं जरूर जानना चाहूंगा।

यहां ध्यान देने की बात यह है कि कामकाज की इस श्रृंखला में किसी भी व्यक्ति ने कच्चे माल का अंश तक अपने बूते तैयार नहीं किया है, सभी ने एक-दूसरे की मदद ली है। एक-दूसरे की मदद एक समान लक्ष्य हासिल करने के लिए। साथ ही हर एक को एक-दूसरे के बिचौलिए के तौर पर देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए अगर इस काम में परिवहन के लिए जरूरी है कि एक व्यक्ति को लगाया जाए, एक व्यक्ति कताई (स्पिनिंग) में और एक अन्य बुनाई (वीविंग) में, तो यों हमें यह सोचना चाहिए कि इनमें से कोई दूसरे पर ज्यादा निर्भर है? क्या हमें माल के परिवहन के लिए किसी की जरूरत नहीं है? क्या किसी को इस काम के लिए अपना वक़्त नहीं देना चाहिए? क्या वह यह काम किसी और के साथ नहीं बांट सकता? क्या ये सभी कुछ अलग या कुछ ज्यादा कर रहे हैं? क्या वे सभी मेहनताना पाने के मामले में दूसरे से भिन्न हैं और क्या उनको मिलने वाला मेहनताना उनके काम के मूल्य और उनके साथ तय रकम पर निर्भर नहीं है? क्या श्रम का यह विभाजन और यह व्यवस्थाएं, स्वेच्छा से निर्धारित नहीं की गई है जिससे सबका भला हो रहा है? तो क्या हमको एक ऐसी समाजवादी व्यवस्था की दरकार है, योजना के नाम तले, जो आकर हमारी स्वैच्छिक व्यवस्था को अपनी स्वेच्छा से तहस-नहस कर दे, श्रम के विभाजन, बंटवारे, सहयोग के लिए काम को समाप्त करके, हमारी सभ्यता की प्रगति को रोक दे?

क्या यहां, जैसा कि मैं वर्णन कर रहा हूं, आपसी संबंध केवल इसलिए कम है कि इसमें लोग स्वेच्छा से आ-जा रहे हैं, अपना स्थान चुन रहे हैं और अपने हिसाब से फैसले लेकर मोलभाव भी अपने ही हिसाब से कर इसका अपने निजी फायदे के लिए इस्तेमाल कर रहे हैं? किसी भी संगठन को ऐसा नाम हासिल करने के लिए क्या किसी सुधारवादी के आकर ऐसी सोच, उसकी इच्छा थोपने का इंतजार करना होगा?

यहां मैं जिस संगठन की बात कर रहा हूं, क्या उसमें सहयोग कम है क्योंकि आखिर इसमें हर कोई अपनी मर्जी से आ-जा रहा है, अपना स्थान खुद चुन रहा है, खुद ही फैसला लेकर मोलभाव भी खुद ही कर रहा है, खुद जिम्मेदारी लेकर और अपने ही लाभ का यकीन भी प्रदर्शित करता है? क्या इस संगठन और सहयोग के चक्र के लिए उसे सुधारवादियों के नामकरण की दरकार है और क्या इन्हें उस पर अपनी इच्छा थोपकर उसे अपने निजी स्वार्थ तक ही सीमित कर देने का अधिकार है?

आप इस 'भविष्य की सोच' वाली विचारधारा का जितना बारीकी से निरीक्षण करेंगे, पाएंगे कि यह कुछ और नहीं बल्कि एक ऐसे अज्ञान की नींव पर खड़ी है जो इसे अमोघ और ज्यादा स्वतंत्र बताकर हर मर्ज की दवा करार देती है।

मुझे उम्मीद है कि पाठक मुझे इस स्तर तक गिरने के लिए माफ करेंगे। कम से कम इस वक़्त तो मेरा यह प्रयास बेकार नहीं है, जबकि सेंट सिमोनियन की किताबों और समूहवाद के समर्थकों (एडवोकेट्स ऑफ फेलेन्स्टेरीज) और इकेरिया के प्रशंसक, [*यहां लॉर्ड हेनरी डी रॉवरॉय, कामते डी सेंटसिमोन (1760-1825) की बात हो रही है जो फ्रांस के ऐतिहासिक समाजवाद के संस्थापक हैं। 1832 में अपने अखबार ली फेलेनस्तेयर में फ्रैंकॉइस चार्ल्स फोरियर द्वारा प्रस्तावित 'सामूहिक घरों (फेलेंग्रेस)' की बात हो रही है, जिसकी समाजवादी कल्पना यह थी कि ऐसी एक-एक इमारत में 1600 लोगों को रखा जाएगा। यहां 'वॉयेज ऑफ इकारिया' किताब का भी जिक्र है जो एटेन केबेट (1788-1856) की एक काल्पनिक आधार पर लिखी पुस्तक है।*] बिचौलियों के खिलाफ अपने बयानों की झड़ी से प्रेस, असेंबली पर छाए हुए हैं और श्रम और विनिमय की आज़ादी के लिए खतरा बन गए हैं।

### 7. व्यापार नियंत्रण

मि. परफेक्शनिस्ट (मैंने यह नाम नहीं दिया, यह तो एम. चार्ल्स डूपिन का काम है) ने अपना वक़्त और अपनी पूंजी से अपनी जमीन से मिले लौह अयस्क को लोहे में परिवर्तित करने के लिए किया। चूंकि प्रकृति बेल्यिजम के लोगों पर कुछ ज्यादा ही मेहरबान रही है, उन्होंने मि. परफेक्शनिस्ट की तुलना में फ्रांस को बेहतर दामों पर लोहा बेचना शुरू कर दिया। इससे हुआ यह कि सभी फ्रांसीसी या फ्रांस कम श्रम के इस्तेमाल के बाद भी लोहे की एक तय मात्रा फ्लेंडर्स के अच्छे लोगों से हासिल कर सकते थे। इसलिए अपने हितों को देखते हुए उन्होंने इस परिस्थिति का पूरा फायदा उठाया और इसके साथ ही सैकड़ों कील निर्माता (नेलमेकर), मेटलवर्कर, गाड़ी बनाने वाले (कार्टराइट्स), मैकेनिक, लुहार और हल बनाने

वाले (प्लोमैन) या तो खुद या बिचौलियों की मदद से लोहा हासिल करने के लिए नियमित तौर पर बेल्जियम जाने लगे। मि. परफेक्शनिस्ट को यह सब पसंद नहीं आया।

उनका पहला प्रयास अपने दोनों हाथों की ताकत का इस्तेमाल करके इनको रोकने का था। यह काम वह अकेला ही कर सकते थे, क्योंकि नुकसान उन्हें अकेले को ही हुआ था। उन्होंने खुद से कहा, मैं अपनी कार्बाइन लूंगा, बेल्ट में चार पिस्टल लगाऊंगा, गोलियों की संदूक पूरी भर लूंगा, कमर पर तलवार लटका लूंगा और पूरी तरह से हथियारों से लैस होकर सीमा पर पहुंच जाऊंगा। वहां मैं पहले मेटलवर्कर, कील निर्माता, लुहार, मैकेनिक या ताला बनाने वाले (लॉकस्मिथ) को मार गिराऊंगा जो मेरी बजाय अपने लाभ की तलाश में वहां जा रहे हैं। इससे उनको अच्छा सबक मिलेगा!

रवाना होने से पहले मि. परफेक्शनिस्ट के पास सोचने के लिए चंद सैकंड थे, जिन्होंने उनके लड़ने की इच्छा को कुछ कम कर दिया। उन्होंने खुद से कहाः पहली बात तो यह कि संभव है कि लोहे के खरीददार, मेरे हमवतन और मेरे दुश्मन, इससे नाराज हो सकते हैं और संभव है कि उनकी बजाय मैं ही मारा जाऊं। साथ ही अगर मेरे सारे नौकर भी मेरे साथ आ गए तो वो पूरी सीमा की रक्षा नहीं कर सकते। साथ ही इस सारी उठापटक में परिणाम के लिहाज से मेरा बहुत ज्यादा धन खर्च हो जाएगा।

मि. परफेक्शनिस्ट दूसरे लोगों की तरह खुद को आजाद ही मानकर हाथ पर हाथ धरकर बैठने की तैयारी कर ही रहे थे कि उनके दिमाग में एक जबर्दस्त विचार आया।

उन्हें याद आया कि पेरिस में कानून बनाने की एक बहुत बड़ी फैक्टरी मौजूद है। कानून क्या है? उन्होंने खुद से सवाल किया। यह एक ऐसा कदम है, चाहे अच्छा हो या फिर बुरा, एक बार कानून बना तो फिर उसका पालन करना ही पड़ता है। इस कानून का पालन कराने के लिए एक सुरक्षा बल होता है। इस सुसंगठित सुरक्षा बल को तैयार करने के लिए पैसा भी पूरे देश से वसूला जाता है।

ऐसे में अगर मैं पेरिस की उस महान कानून बनाने वाली फैक्टरी से एक छोटा सा प्यारा सा कानून बनवा लूं, जो यह कहे 'बेल्जियम के लोहे पर प्रतिबंध लगाया जाता है' तो मुझे यह फायदा होगाः सरकार मेरे नौकरों की बजाय सीमा पर 20 हजार सैनिक भेज देगी जो अड़ियल किस्म के मेटलवर्करों, ताला बनाने वालों, कील निर्माताओं, लुहारों, कारीगरों, मैकेनिकों और हल बनाने वालों को रोक देंगे। उसके बाद इन 20 हजार सैनिकों को उनकी सेवा का मेहनताना देने के लिए उनके बीच इन्हीं लुहारों, कील निर्माताओं, कारीगरों, हल निर्माताओं से कर के तौर पर लिए गए 2.5 करोड़ फ्रैंक बांट दिए जाएंगे। इस तरह से संगठित किए जाने पर सुरक्षा इंतजाम जहां बेहतर होंगे, मेरी जेब से कुछ भी नहीं जाएगा। मैं दलालों की क्रूरता

से बच जाऊंगा, मैं अपना लोहा अपने द्वारा तय कीमत पर बेच पाऊंगा और मैं अपने लोगों को बेशर्मी के साथ छले जाने का आनंद भी उठा सकूंगा। वह उन्हें यूरोप की प्रगति के लिए अग्रदूत और प्रेरक बने रहने का सबक भी सीखा देगा। यह एक बेहद चतुर चाल होगी, जिसे आजमाने का जोखिम तो लिया ही जा सकता है।

इसलिए मि. परफेक्शनिस्ट कानून की फैक्टरी की शरण में चले गए। (किसी और वक्त मैं वहां के काले कारनामे आपके सामने उजागर करुंगा, आज मैं केवल उन्हीं बातों का जिक्र करना चाहूंगा जिसे पूरी दुनिया ने देखा)। उन्होंने गणमान्य लोगों, लेजिस्लेटरों के समक्ष यह तर्क पेश कियाः

'बेल्जियम का लोहा फ्रांस में 10 फ्रैंक में बेचा जा रहा है, जिससे मुझे भी लोहा इसी कीमत पर बेचने के लिए मजबूर होना पड़ रहा है। मैं अपना लोहा 15 फ्रैंक में बेचना चाहता हूं, जो कि बेल्यिजन लोहे से मिल रही प्रतिस्पर्धा के कारण संभव नहीं है। कोई ऐसा कानून बनाइए जो कहे, बेल्जियम का लोहा फ्रांस में प्रवेश नहीं कर सकता। मैं तत्काल अपने लोहे की कीमत पांच फ्रैंक बढ़ा दूंगा जिसका परिणाम यह होगा किः जनता को मिलने वाले लोहे के हर 100 किलोग्राम के लिए मुझे 10 की बजाय 15 फ्रैंक मिलेंगे। मैं ज्यादा जल्द अमीर बन जाऊंगा। मैं अपनी खदानों का ज्यादा दोहन कर सकूंगा। मैं ज्यादा लोगों को रोजगार दूंगा। मेरे कर्मचारी और मैं ज्यादा पैसे खर्च करेंगे, जो हमारे आसपास मीलों तक फैले लोगों को फायदा पहुंचाएगा। बाजार बड़ा होते जाने के कारण ये सप्लायर उद्योग को और अधिक ऑर्डर देने लगेंगे। धीरे-धीरे यह प्रक्रिया पूरे देश में फैल जाएगी। ये 100 सोस के जो छोटे हिस्से आप मेरे खाते में डालेंगे, एक बड़ी सी झील में फेंके गए एक पत्थर की तरह, तो इससे झील के पानी जैसी दूर-दूर कोने-कोने तक फैल जाने वाली तरंगे उठेंगी।'

इस संबोधन से प्रभावित, यह जानकर कि केवल एक कानून भर से लोगों की समृद्धि में इजाफा होगा, कानून के निर्माता प्रतिबंध के पक्ष में मतदान कर देंगे। 'यह श्रम और बचत की क्या बात हो रही है?'वे कहेंगे, 'राष्ट्रीय संपदा को बढ़ाने के इन दुखदायी तरीकों का क्या लाभ है, जब एक हुक्मनामा यह कर सकता है?'

और वास्तविकता में कानून के वे सारे प्रभाव थे ही जो मि. परफेक्शनिस्ट ने बताए थे, लेकिन इसके कुछ और परिणाम भी थे। उनकी सोच के साथ अन्याय न करते हुए कहा जा सकता है उन्होंने जो तथ्य पेश किए थे उसके कारण गलत नहीं थे, लेकिन आधे-अधूरे थे। विशेषाधिकार की मांग करते वक्त उन्होंने उन परिणामों को बताया जो देखे जाते हैं, और इसकी छाया में वो परिणाम नहीं बताए जो देखे नहीं जाते। उन्होंने केवल दो ही लोगों का

चित्रण किया है, जबकि इसमें तो तीन लोग शामिल हैं। यह हमारा काम है कि उनसे जो छूट गया उसे हम सामने लाएं स्वेच्छा से या फिर पूर्व तैयारी के साथ।

हां, कानून के जरिये जो पांच फ्रैंक अब मि. परफेक्शनिस्ट की जेब में जा रहे हैं, उससे उनको निजी तौर पर और उन लोगों को भी फायदा हो रहा है जिन्हें इससे रोजगार मिला है। और अगर हुक्मनामे के चलते यह पांच फ्रैंक चांद से जमीन पर आते तो इन अच्छे प्रभावों के साथ कोई बुरे प्रभाव भी नहीं देखने को मिलते।

दुर्भाग्य से ये रहस्यमयी 100 सोस चांद से जमीन पर नहीं आए थे, बल्कि ये तो मेटलवर्कर, एक कील निर्माता, एक गाड़ी निर्माता, एक लुहार, एक बिल्डर की जेब से निकले हैं। जेम्स गुडफेलो के एक शब्द में कहें तो बदले में आज भी उसकी जेब में एक मिलिग्राम ज्यादा लोहा नहीं आ रहा है, जबकि वह आज 10 फ्रैंक से ज्यादा दे रहा है। जाहिर तौर पर इससे सारा समीकरण ही बदल जाता है। श्रीमान संरक्षणवादी (मि. प्रोटेक्शनिस्ट) का नफा जेम्स गुडफेलो के नुकसान बराबर (काउंटर बैलेंस) हो जाएगा। और जो कुछ भी श्रीमान संरक्षणवादी इस पांच फ्रैंक से घरेलू उद्योग (डोमेस्टिक इंडस्ट्री) की प्रगति के लिए करेंगे जेम्स गुडफेलो नहीं कर सकेंगे। झील में एक स्थान विशेष से ही पत्थर केवल इसीलिए फेंका गया है क्योंकि दूसरे स्थान से पत्थर फेंकने पर प्रतिबंध लगा हुआ है।

इसलिए जो नहीं देखा जाता, उसने जो देखा जाता है को ठीक विपरीत तरीके से बराबर (काउंटर बैलेंस) कर दिया। इस समूची प्रक्रिया का निचोड़ अन्याय ही है, और यह इसलिए और ज्यादा निंदनीय है क्योंकि ऐसा कानून के नाम पर किया जा रहा है।

लेकिन यही अंत नहीं है। मैं कह चुका हूं कि इसमें तीसरा व्यक्ति हमेशा अंधेरे में ही रह जाता है। मुझे अब उसे यहां सामने लाना ही होगा ताकि वह पांच फ्रैंक के एक और नुकसान से वाकिफ करा सके। तब जाकर हम इस समूची प्रक्रिया का परिणाम जान सकेंगे।

जेम्स गुडफेलो के पास 15 फ्रैंक थे, उसकी मेहतन की कमाई। (हम उस वक़्त की बात कर रहे हैं जब वह आजाद था।) वे अपने 15 फ्रैंक से क्या करते थे? वह 10 फ्रैंक से मेम के लिए एक टोपी खरीदता है। और इसी मेम की टोपी से वह (या उसका बिचौलिया) बेल्जियम के 100 किलोग्राम लोहे के लिए भुगतान करता है। अब भी उसके पास पांच फ्रैंक बचे हुए हैं। वह उन्हें नदी में नहीं फेंक देता (और यही वह है जो देखा नहीं जाता), बल्कि वह उन्हें किसी सामान बनाने वाले या किसी अन्य को बदले में संतोष हासिल करने के लिए उदाहरण के तौर पर एक पब्लिशर को बोसेत [*जैस बेनिन बोसेत (1627-1704), कंडोम और म्यूस के बिशप, एक बहुत ही अच्छे उपदेशक थे। राजशाही परिवार के किसी सदस्य की मौत के बाद वो जो उपदेश देते थे, वह सुनने लायक हुआ करता था। लुई चौदहवें के बेटे, यानी अगले राजा*

*को सिखाने के दौरान उन्होंने हिस्तोयर यूनिवर्सल लिखी, एक ऐसा फ्रैंच क्लासिक था जिसे पढ़कर न जाने फ्रांस की कितनी पीढ़ियां बड़ी हुईं। प्रोटेस्टेंटों के खिलाफ उनका कड़ा रूख और गेलिकन मूवमेंट के सफल नेतृत्व ने फ्रांसिसी कैथोलिक चर्च को और अधिक स्वायत्त बना दिया। हिस्तोयर यूनिवर्सल ने उनके धार्मिक के साथ-साथ साहित्यिक महत्व को भी उजागर कर दिया।*] के *डिस्कोर्स ऑन यूनिवर्सल हिस्ट्री* के लिए दे देता है।

इस तरह से उसने घरेलू उद्योग (डोमेस्टिक इंडस्ट्री) को 15 फ्रैंक का प्रोत्साहन दियाः

10 फ्रैंक पेरिस के मेमों के लिए हैट बनाने वाले को

5 फ्रैंक पब्लिशर को

जहां तक जेम्स गुडफेलो की बात है तो वह अपने 15 फ्रैंक से संतोष देने वाली दो बातें हासिल करता हैः

1. 100 किलोग्राम लोहा

2. एक किताब

अब हुक्मनामा आ चुका है।

जेम्स गुडफेलो का क्या होता है? घरेलू उद्योग का क्या होता है?

जेम्स गुडफेलो अपने 15 फ्रैंक का 100वां हिस्सा तक मि. संरक्षणवादी (मिस्टर प्रोटेक्शनिस्ट) को दे डालता है, 100 किलोग्राम लोहे के लिए, अब उसके पास कुछ नहीं सिवाय इस लोहे का इस्तेमाल करने के। वह अब किताब या किसी ऐसी ही बात का आनंद नहीं उठा सकता। वह पांच फ्रैंक भी गंवा देता है। आप इससे सहमत होंगे, आप सहमत हुए बगैर रह ही नहीं सकते, आप इस बात से भी असहमत नहीं हो सकते कि जब कारोबार पर दबाव के कारण कीमतों में उछाल आता है तो अंतर की चोट उपभोक्ता को ही लगती है।

लेकिन कहा जाता है कि इस अंतर का लाभ घरेलू उद्योग (डोमेस्टिक इंडस्ट्री) को हुआ है।

नहीं उसे यह लाभ नहीं मिलता। क्योंकि हुक्मनामे के बाद भी उसे उतना ही लाभ हो रहा है, जितना कि पहले हो रहा था, 15 फ्रैंक का।

फर्क हुआ है तो केवल इतना कि जेम्स गुडफेलो के 15 फ्रैंक अब धातुकर्मियों को जाता है, जो पहले मेमों के लिए हैट बनाने वाले और पब्लिशर के बीच बंटता था।

श्रीमान संरक्षणवादी (मिस्टर प्रोटेक्शनिस्ट) द्वारा सीमा पर खुद इस्तेमाल किए जाने वाले दल-बल और उसी काम के लिए सरकारी दल-बल के इस्तेमाल को नैतिकता के आइने में काफी अलग तरह से देखा जा सकता है। ऐसे लोग भी हैं जिनका मानना है कि लूटपाट जब कानून के लबादे में हो तो उसकी अनैतिकता खत्म हो जाती है। निजी तौर पर मैं इससे

भयावह स्थिति की कल्पना नहीं कर सकता। चाहे जो हो, एक बात तो तय है कि दोनों के ही आर्थिक परिणाम एक समान ही हैं।

आप इस सवाल को किसी भी दृष्टिकोण से देख सकते हैं, लेकिन अगर आप निष्पक्ष होकर देखेंगे, तो पाएंगे कि लूटपाट कानूनी हो या गैरकानूनी, दोनों से ही किसी का भला नहीं होता। हम इस बात से इनकार नहीं कर सकते कि इसके जरिये श्रीमान संरक्षणवादी (मिस्टर प्रोटेक्शनिस्ट) या उनके उद्योग या फिर घरेलू उद्योग (डोमेस्टिक इंडस्ट्री) को पांच फ्रैंक मिल सकते हैं। लेकिन हम निश्चित तौर पर यह भी मान सकते हैं कि यह दो तरह के नुकसान को जन्म देगाः एक जेम्स गुडफेलो को, जो उस बात के लिए अब 15 फ्रैंक देगा, जो उसे पहले 10 फ्रैंक में ही मिल जाती थी। दूसरा घरेलू उद्योग (डोमेस्टिक इंडस्ट्री) को, जिसे अब लाभदायक अंतर नहीं मिलता। अब फैसला आप ही कीजिए इन दोनों के नुकसान से वह कौनसा लाभ हो रहा है जिसकी हम बात कर रहे हैं। जो आप नहीं चुन रहे हैं वह किसी कुल हानि (डेड लॉस) से कम नहीं है।

सबक (मॉरल): ताकत का इस्तेमाल करना उत्पादन करना नहीं समाप्त करना होता है। हे भगवान! अगर ताकत से ही उत्पादन हो पाता तो फ्रांस आज की तुलना में कई गुना संपन्न होता।

### 8. मशीन

'मशीनों का धिक्कार है! हर साल इनकी बढ़ती ताकत लाखों श्रमिकों को कंगाल बना रही है। उनकी नौकरियां छीन रही हैं। नौकरियों के साथ उनका मेहनताना भी छिन रहा है और रोजीरोटी भी। मशीनों का धिक्कार है!'

यह अज्ञानता और पूर्वाग्रह से भरा रूदन है जिसकी प्रतिध्वनि हमारे अखबारों में दिखाई देती है।

लेकिन मशीनों को बददुआ देना तो इंसान के दिमाग को बददुआ देने जैसा है।

मुझे इस बात से हैरानी होती है कि क्या कोई ऐसा भी इंसान है जो इस मत से सहमत हो सकता हो।[5]

क्योंकि पिछले विश्लेषण में, अगर वह सही है तो, इसकी तार्किक परिणिति क्या रही? यह कि सक्रियता, कल्याण, संपत्ति और खुशी केवल मूर्ख देशों को ही मिल सकती है। दिमागी तौर पर जड़, जिन्हें भगवान ने सोचने, निरीक्षण करने, कुछ करने, आविष्कार करने, कम से कम परेशानी से ज्यादा से ज्यादा काम करने का विनाशकारी तोहफा दिया ही नहीं इसके विपरीत, कंगाली, झोपड़ियां, गरीबी और गतिहीनता (स्टेग्नेशन) का कुछ हिस्सा तो हर उस देश की

किस्मत में ही लिखा होता है जो लोहे, आग, हवा, बिजली, मैग्नेशियम , रसायन और यांत्रिकी में, एक शब्द में कहें तो प्रकृति की ताकत में अपने संसाधनों के इतर, समृद्धि की राह खोजता रहता है। रॉस्यू के शदों में कहें तोः 'हर सोचने वाला व्यक्ति विकृत (डिप्रेव्ड) होता है।'

लेकिन यही सबकुछ नहीं है। अगर यह मत सही है और अगर हम सब इंसान सोचते और आविष्कार करते रहते हैं, हकीकत में पहले से लेकर अंतिम व्यक्ति तक, अपने अस्तित्व के हर पल, इसमें प्रकृति की ताकतों की मदद लेने का प्रयास करते हैं, कम मेहनत से ज्यादा हासिल करते हैं ताकि अपना या अपने लिए काम करने वालों की श्रम कुछ कम हो सकते, अधिक से अधिक संतोष हासिल करने के लिए कम काम से, तो हमें इस निष्कर्ष पर पहुंचना ही होगा कि समूची मानव सभ्यता का पतन हो रहा है। इसका मुख्य कारण है प्रगति की ओर अग्रसर होने के इस बुद्धिमानी भरा प्रयास, जो कि हममें से हर एक को यातनाएं दे रहा है।

इसलिए आंकड़ों की मदद से यह साबित करना होगा कि लेंकेस्टर के निवासी, मशीनों से पटे अपने इलाके को छोडक़र उस आयरलैंड की ओर पलायन कर रहे हैं जहां मशीनों के बारे में कोई नहीं जानता। इतिहास की मदद से यह साबित करना होगा कि बर्बरता की छाया ने सभ्यता के युग को अंधेरे में धकेल दिया है और यह भी कि सभ्यता अज्ञान और बर्बरता के युग में ही फलती-फूलती है।

विरोधाभासों के इस पुलिंदे में जाहिर तौर पर कुछ ऐसा है जो हमें धक्का देता है और यह चेतावनी भी कि समस्या की जड़ में एक ऐसी बात है जो इसके हल के लिए लाजमी है और जिसे पर्याप्त तौर पर सामने नहीं लाया गया है।

सारा रहस्य इसी बात में छिपा हैः क्या देखा जाता है कि पीछे छिपा है, क्या नहीं देखा जाता। मैं इस पर कुछ रोशनी डालने की कोशिश करुंगा। मेरा प्रतिपादन (डेमांस्ट्रेशन) कुछ और नहीं पहले की ही बातों का दोहराव होगा, क्योंकि समस्या वही की वही है।

अगर जोरजबर्दस्ती से न रोका जाए तो सौदा इंसान कि मूल प्रवृत्ति है। सौदा किसी एक बात के बदले में उतने ही मूल्य की बात हासिल करने के लिए। जिसमें मेहनत कम लगे, फिर भले ही वह सौदा किसी सक्षम विदेशी उत्पादक के जरिये आता हो या फिर एक सक्षम मशीनी उत्पादक के जरिये।

इस प्रवृत्ति के प्रति जो सैद्धांतिक आपत्ति उठाई जाती है वो दोनों ही मामलों में समान है। मामला पहला हो या दूसरा दोनों में ही दुहाई रोजगार की कमी की ही दी जाती है। हालांकि इसका वास्तविक प्रभाव यही होता है कि यह एक व्यक्ति का रोजगार दूसरे को दे देता है।

और यही वजह है कि वास्तविकता में वही बाधा, ताकत, दोनों ही मामलों में सामने खड़ी कर दी जाती है। लेजिस्लेटर विदेशी प्रतिस्पर्धा को प्रतिबंधित और मशीनी प्रतिस्पर्धा का

निषेध कर देता है। किसी व्यक्ति के मूल प्रवृत्ति का ही गला घोंटना क्या उसकी आज़ादी छीन लेने से कुछ कम है?

कई देशों में, यह सच है, लेजिस्लेटर इन दोनों तरह की प्रतिस्पर्धाओं में से केवल एक पर ही हमला बोलते हैं और दूसरे मामले में खुद को केवल भुनभुनाने तक ही सीमित रखते हैं। यह इस बात को साबित करता है कि इन देशों में लेजिस्लेटरों का व्यवहार विसंगतिपूर्ण होता है।

हमें हैरान नहीं होना चाहिए। हर गलत राह में विसंगतियां तो होती ही हैं। अगर ऐसा नहीं होता तो मानव सभ्यता समाप्त हो चुकी होती। हमने कभी न देखा है और न कभी देखेंगे कि किसी गलत सिद्धांत का पूरी तरह से पालन किया गया। मैंने यह बात कहीं और भी कही है: मूर्खता या बेहूदगी तो विसंगति का चरम है। मैं यहां यह भी जोड़ना चाहूंगा: यही इसका सबूत भी है।

आइए अब हमारे प्रतिपादन (डेमांस्ट्रेशन) की ओर चलें, यह ज्यादा लंबा नहीं खिंचेगा।

जेम्स गुडफेलो के पास दो फ्रैंक थे, उसने दो श्रमिकों को उन्हें कमाने का मौका दिया।

अब मान लीजिए कि उसने रस्सी और वजन से मिलाकर ऐसी व्यवस्था खोज निकाली जो काम को आधा कर दे।

उसे अब उतनी ही संतुष्टि मिल रही है और वह एक फ्रैंक भी बचा लेता है और एक श्रमिक की छुट्टी कर देता है।

उसने एक श्रमिक की छुट्टी कर दी: यह वो है जो देखा जाता है।

केवल इसे ही देखने वाले लोग कहने लगते हैं: 'देखो मानव सभ्यता के कारण कितनी विपत्ति झेलना पड़ रही है! देखिए कैसे आज़ादी समानता के लिए घातक है! इंसान के दिमाग ने एक कामयाबी हासिल की और तत्काल एक श्रमिक हमेशा के लिए गरीबी की गर्त में चला गया। शायद जेम्स गुडफेलो आज भी दोनों श्रमिकों को काम दे सकते हैं, लेकिन ऐसे में वह दोनों को 10 -10 सोस से ज्यादा नहीं दे पाएंगे, क्योंकि दोनों प्रतिस्पर्धा के चलते और काम हासिल करने के लिए अपने पारिश्रमिक को कम कर देंगे। ऐसे ही अमीर और अमीर बनते जाते हैं और गरीब और गरीब। हमें समाज का पुनर्गठन करना होगा।'

एक बेहतरीन निष्कर्ष और शुरूआती ब्रह्मवाक्य के तौर (इनिशियल प्रिमाइस) पर तो इसका इस्तेमाल किया ही जा सकता है।

दुर्भाग्य से ब्रह्मवाक्य (प्रिमाइस) और निष्कर्ष दोनों ही गलत हैं। क्योंकि इस घटना के आधे हिस्से में वो है जो देखा जाता है, लेकिन दूसरे आधे हिस्से में वो है जो देखा नहीं जाता।

चूंकि अपने ही आविष्कार के कारण जेम्स गुडफेलो अब किसी तय संतोष को हासिल करने के लिए श्रमिक पर एक से ज्यादा फ्रैंक खर्च नहीं करता, तो अब उसके पास एक और फ्रैंक है।

इसलिए अगर बाजार में कोई श्रमिक अपना रोजगार देने के लिए मौजूद है तो कोई पूंजीपति उसे यह एक फ्रैंक देने के लिए मौजूद होगा। ये दोनों मिलते हैं और एक हो जाते हैं।

और यह दिन की तरह साफ बात है कि श्रम की आपूर्ति और मांग के बीच, वेतन की आपूर्ति और मांग के बीच का संबंध किसी भी तरह से नहीं बदला है।

यह आविष्कार और श्रमिक, जिसे एक फ्रैंक दिया गया है, अब पहले दो श्रमिकों द्वारा किया जा रहा काम कर रहे हैं।

पहले दूसरा फ्रैंक हासिल करने वाला श्रमिक अब कोई और नया काम कर रहा है।

फिर आखिर दुनिया में क्या बदलाव हुआ है? बल्कि राष्ट्रीय संतोष बढ़ा ही है, दूसरे शब्दों में यह आविष्कार एक मुफ्त की कामयाबी और मानव सभ्यता को मुफ्त का तोहफा है।

मेरे द्वारा दिए गए प्रमाण से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता हैः

'मशीनों के आविष्कार से सारे फायदे पूंजीपति के ही खाते में जा रहे हैं। श्रमिक वर्ग, हालांकि इससे कुछ ही देर के लिए प्रभावित होता है, इससे मुनाफा नहीं कमाता क्योंकि आपके ही कहे अनुसार वे देश के उद्योग के हिस्से को खत्म करने की बजाय केवल पुनर्स्थापित करते हैं। यह ठीक है लेकिन यह भी कि बिना किसी इजाफे के।'

सारी आपत्तियों का जवाब दे पाना इस निबंध के दायरे में नहीं है। इसका इकलौता उद्देश्य तो अज्ञानता भरे पूर्वाग्रह से लड़ना है, जो बहुत खतरनाक है और बहुत ज्यादा फैला हुआ भी। मैं यह साबित करना चाहता हूं कि एक नई मशीन जब एक तय संख्या में श्रमिकों को काम देती है तो उनके वेतन का इंतजाम भी कर देती है। ये श्रमिक और यह पैसा एक ऐसी चीज का उत्पादन करते हैं जो पहले बगैर मशीन के संभव नहीं थी। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि आविष्कार का अंतिम फल समान श्रम के साथ संतोष में समान इजाफा है।

इस संतोष के इजाफे का फायदा किसे मिलता है?

हां, ये सच है कि सबसे पहले पूंजीपति, आविष्कारक जो मशीन को सबसे पहले सफलतापूर्वक इस्तेमाल करता है और उसकी विद्वता और हौसले का यही इनाम है। इस मामले में, जैसा कि हमने देखा, उसे उत्पादन की कीमत में कटौती दिखाई देती है, फिर भले ही वह कैसे भी (और हमेशा ऐसा ही होता है) खर्च की गई हो, उतने ही लोगों को काम मिल जाता है जितने हाथों को मशीन ने बेरोजगार कर दिया था।

लेकिन जल्द ही प्रतिस्पर्धा के चलते उसे अपनी बचत जितनी ही कीमत कम करना पड़ती है।

और अब मुनाफा मशीन का आविष्कार करने वाले आविष्कारक को नहीं मिलता, यह मिलता है उत्पाद के खरीदार को, उपभोक्ता को, जनता को एक शब्द में कहें तो पूरी मानव जाति को।

और जो नहीं देखा जाता, वो यह कि तमाम उपभोक्ताओं द्वारा की गई बचत एक ऐसा फंड तैयार कर देती है, जिससे पारिश्रमिक का भुगतान किया जा सकता है, उस नुकसान की भरपाई जो मशीन के आने से हुई थी।

इस तरह (फिर एक बार पहले के ही उदाहरण को लेते हुए), जेम्स गुडफेलो अब एक उत्पाद दो फ्रैंक के पारिश्रमिक का भुगतान करके हासिल कर रहा है।

शुक्रिया इस आविष्कार का कि अब उसे मानव श्रम पर एक फ्रैंक ही खर्च करना पड़ रहे हैं।

जब तक वह उत्पाद को उसी कीमत पर बेचता है, इस विशेष उत्पाद को बनाने के लिए एक श्रमिक कम ही रहेगा, यह वो है जो देखा जाता है, लेकिन इस फ्रैंक से जेम्स गुडफेलो ने एक अन्य श्रमिक को रोजगार दे दिया है, यह वो है जो देखा नहीं जाता।

जब एक सामान्य घटनाक्रम में जेम्स गुडफेलो उत्पाद की लागत में एक फ्रैंक की कमी करता है, तो वह बचत का अहसास नहीं कर पाता। तब वह नए उत्पाद में राष्ट्रीय रोजगार में एक फ्रैंक का योगदान नहीं दे पाता। लेकिन जो कोई भी इसे हासिल करता है, यानी कि मानव जाति में से, उसकी जगह ले लेता है। जो उत्पाद खरीदता है वह अब एक फ्रैंक का कम भुगतान करता है और उसकी यह बचत पारिश्रमिक के खाते में चली जाती है, यह फिर वही है जो देखा नहीं जाता।

इस समस्या का एक और समाधान, जो वस्तुस्थिति या वास्तविकता (फेट) पर आधारित है, आगे देखने को मिलेगा।

किसी ने कहा हैः 'मशीनों के कारण उत्पादन की लागत कम हो जाती है और उत्पाद की कीमत भी। कीमतों में कमी के कारण मांग में इजाफा देखने को मिलता है और मांग में इजाफे के कारण उत्पादन बढ़ाना जरूरी हो जाता है और अंततः मशीन के आगमन से जितने लोग बेरोजगार हुए थे तकरीबन उतने ही लोगों को फिर से रोजगार मिल जाता है, कई बार तो ज्यादा लोगों को भी।' इस तर्क के समर्थन में वे प्रिंटिंग, स्पिनिंग, प्रेस आदि के उदाहरण देते हैं।

यह प्रतिपादन वैज्ञानिक आधार वाला नहीं है।

हमें ऐसे में तो यह निष्कर्ष भी निकालना होगा कि अगर इस उत्पाद विशेष की खपत स्थिर या उसके आसपास ही रहती है तो मशीन रोजगार के लिए नुकसानदेह है। जबकि ऐसा है नहीं।

मान लीजिए कि एक देश में सभी लोग पुरुष टोपी पहनते हैं। अगर मशीन की मदद से टोपियों की कीमत आधी की जा सकती हो, तो इसका यह जरूरी तो नहीं कि टोपियों की बिक्री दोगुनी हो जाएगी।

तो क्या ऐसे मामले में यह कहा जाएगा कि राष्ट्रीय श्रमशक्ति का एक हिस्सा बेकार बैठने पर मजबूर कर दिया गया? अज्ञानता भरे तर्क के लिहाज से तो हां। मेरे हिसाब से नहीं, हालांकि उस देश में कोई भी व्यक्ति जरूरत से ज्यादा टोपियां नहीं खरीदेगा, पारिश्रमिक का समूचा फंड फिर भी अनछुआ ही रहेगा, जो पैसा टोपी के कारोबार के लिए नहीं जाएगा, उपभोक्ताओं द्वारा की गई बचत में देखा जा सकेगा। इससे उस तमाम श्रमशक्ति को भी भुगतान होगा, जो मशीन के कारण बेरोजगार हो गई है। इससे सभी उद्योगों के विकास को भी गति मिलेगी।

और बातें इसी तरह से होती हैं। मैंने देखा है कि पहले 80 फ्रैंक में बिकने वाले अखबार अब 48 फ्रैंक में बिकते हैं। यह पाठकों के लिए सीधे 32 फ्रैंक की बचत है। यह अटल नहीं है कि ये पूरे 32 फ्रैंक पत्रकारिता के ही खाते में जाते हों, लेकिन जो अटल है वो यह कि ये 32 फ्रैंक अगर इस राह नहीं जाते तो किसी और के खाते में जाएंगे। इनमें से एक फ्रैंक और अखबार खरीदने के लिए इस्तेमाल होगा, जबकि दूसरा खाने-पीने का सामान खरीदने के लिए, तीसरा बेहतर कपड़ों के लिए और चौथा बेहतर फर्नीचर के लिए।

इस तरह से सारे उद्योग एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। वे एक बड़ा नेटवर्क बनाते हैं जो गुप्त चैनलों के जरिये एक-दूसरे से जुड़े रहते हैं। जो बचत होती है वह सभी को फायदा पहुंचा देती है। जो समझना महत्वपूर्ण है वो यह कि अर्थव्यवस्था, कभी भी रोजगार और वेतन के खर्च से प्रभावित नहीं होती।[6]

### 9. उधार या कर्ज (क्रेडिट)

वैसे तो हमेशा से ही, लेकिन पिछले कुछ वर्षों में लोग उधार (कर्ज) की परंपरा के वैश्वीकरण के जरिये संपन्नता के वैश्वीकरण के सपने कुछ ज्यादा ही देखने लगे हैं।

मुझे यकीन है कि मैं यह कहते हुए कुछ अतिशयोक्ति नहीं कर रहा हूं कि खासतौर पर फरवरी की क्रांति [*22 फरवरी 1848 को प्रधानमंत्री गुईजोत के खिलाफ जनता का जोरदार प्रदर्शन, जिसके परिणामस्वरुप किंग लुई फिलिप को उन्हें निलंबित करना पड़ा था। यह*

*फैसला वैसे राजा के लिए बेकार ही साबित हुआ, क्योंकि दूसरे ही दिन प्रदर्शनकारियों के एक समूह पर सेना की एक टुकड़ी ने गोलीबारी कर दी। इसके बाद पेरिस के लोगों ने सशस्त्र क्रांति कर दी, जिसने किंग लुई फिलिप की विदाई और दूसरी क्रांति की नींव रख दी।*] के बाद से तो पेरिस के अखबारों ने कर्ज को सभी सामाजिक समस्याओं का हल बताते हुए दसियों हजार पर्चे निकाल दिए हैं।

दुर्भाग्य से इस हल का आधार ही एक दृष्टिभ्रम की तरह है, यह उतना ही कारगर है जितना कि एक दृष्टिभ्रम हो सकता है।

ये लोग नकद मुद्रा और उत्पादों के बीच भ्रम के साथ शुरू करते हैं। फिर वे कागजी मुद्रा और नकद मुद्रा के बीच भ्रम में उलझ जाते हैं और इन दो भ्रमों के आधार पर वे फिर जमीनी सच्चाई को हासिल करने का प्रयास करते हैं।

इस सवाल में यह बेहद जरूरी है कि आप मुद्रा, सिक्के, बैंक नोट और अन्य वह सभी माध्यम भूल जाएं जिनके जरिये एक हाथ से दूसरे हाथ में जाता है। ताकि आप केवल उत्पाद को देख सकें, जो वास्तव में कर्ज का सार है।

क्योंकि जब कोई किसान एक हल खरीदने के लिए 50 फ्रैंक का कर्ज लेता है, तो उसे जो उधार दिया गया है वह 50 फ्रैंक नहीं वो हल है।

और जब एक कारोबारी एक मकान खरीदने के लिए 20 हजार फ्रैंक का कर्ज लेता है तो उसके पास जो है वह 20 हजार फ्रैंक नहीं मकान है।

पूंजी तो विभिन्न लोगों के बीच कारोबारी व्यवस्था का मात्र एक जरिया है।

हो सकता है पीटर अपना हल किराये पर न देना चाहता हो, लेकिन जेम्स अपने धन से कर्ज देने के लिए तैयार हो। ऐसे में विलियम क्या करेगा? वह जेम्स से कर्ज लेगा और पीटर से हल को खरीद ही लेगा।

लेकिन वास्तविकता में कोई भी कर्ज केवल धन हासिल करने के लिए नहीं लेता, यह धन किसी उत्पाद के लिए लिया जाता है।

साथ ही किसी भी देश में उपलब्ध उत्पादों से ज्यादा एक-दूसरे में आदान-प्रदान की गुंजाईश नहीं होती।

बाजार में चलन में मौजूद नकद मुद्रा और हुंडियों (बिल्स) का योग कितना भी हो, सभी कर्जदार मिलाकर भी कुल कर्ज देने वालों द्वारा दिए जा रहे धन से ज्यादा का हल, मकान, औजार, सामान या कच्चा माल नहीं ले सकते।

इस बात को ध्यान में रखिए कि हर कर्ज लेने वाले के लिए एक कर्ज देने वाला होना चाहिए, यानी कि किसी भी उधार का अर्थ कर्ज ही है।

यह स्वीकार्य होने के बाद, कर्ज देने वाले संस्थानों से किस बेहतरी की अपेक्षा की जा सकती है? यही न कि कर्ज लेने और देने वालों के लिए एक-दूसरे को खोजना ज्यादा आसान हो जाए और उनमें सहमति भी बन जाए। लेकिन वे भी कर्ज पर ली जाने वाली और उधार ली जाने वाली वस्तुओं में एकाएक इजाफा नहीं कर सकते।

लेकिन सामाजिक सुधारकों की उम्मीदों को पूरा करने के लिए कर्ज देने वाले संस्थानों को यह भी करना ही होगा, क्योंकि ये सुधारक हर जरूरतमंद को हल, मकान, औजार, सामान और कच्चा माल दिए बगैर चैन से बैठने वाले नहीं।

और क्या लगता है कि ऐसा करने के लिए उनकी कल्पना क्या होगी?

सरकार की गारंटी पर कर्ज देकर।

आइए मामले की तह तक जाने की कोशिश करें, क्योंकि यहां बहुत कुछ ऐसा है जो देखा जाता है और जो देखा नहीं जाता। आइए दोनों को देखने की कोशिश करें।

मान लीजिए दुनिया में केवल एक हल है और दो किसान उसे चाहते हैं।

फ्रांस में उपलब्ध हल का मालिक पीटर है। जॉन और जेम्स उस हल को काम के लिए उधार चाहते हैं। जॉन अपनी ईमानदारी, अपनी जायदाद और अपने अच्छे नाम की गारंटी देता है। कोई भी उसमें यकीन कर लेगा, क्योंकि उसका नाम (क्रेडिट) है। जेम्स को लेकर ऐसा विश्वास जता पाना मुश्किल है और स्वाभाविकतया पीटर अपना हल जॉन को उधार दे देता है।

लेकिन अब समाजवाद से प्रेरित सरकार का हस्तक्षेप होता है और वह पीटर से कहती हैः 'अपना हल जेम्स को उधार दे दो। तुम्हारी भुगतान (रिइम्बर्समेंट) की गारंटी सरकार लेती है और यह गारंटी जेम्स से ज्यादा दमदार है, क्योंकि उसके लिए तो वह खुद अकेला जिम्मेदार है और हमारे पास हालांकि कुछ नहीं है, सिवाय करदाताओं के पैसे के, अगर जरूरी हुआ तो हम तुम्हारा मूलधन और याज उन्हीं के धन से चुका देंगे।'

तो पीटर अपना हल जेम्स को दे देता है, यह वह है जो देखा जाता है।

समाजवादी यह कहकर अपनी पीठ ठोंक लेते हैं, 'देखा कैसे हमारी योजना कामयाब रही। सरकार के हस्तक्षेप के कारण ही बेचारे गरीब जेम्स के पास आज हल है। अब उसे हाथ में फावड़ा लेने की जरूरत नहीं, अब तो उसका भविष्य उज्जवल है। यह उस पर उपकार (बेनेफिट) है और पूरे देश के लिए लाभ (प्रॉफिट)।'

नहीं सज्जनों, यह देश के लिए लाभ नहीं है क्योंकि यहां कुछ है जो देखा नहीं जाता।

यह देखा नहीं जाता कि हल अब जेम्स के पास है क्योंकि जॉन के पास नहीं है।

यह देखा नहीं जाता कि जेम्स अब फावड़े की जगह हल चला रहा है जबकि जॉन को हल की जगह फावड़े से काम चलाना पड़ेगा।

परिणामस्वरुप लोग जिसे अतिरिक्त कर्ज समझ रहे हैं वास्तविकता में तो वह कर्ज का स्थानांतरण ही है।

साथ ही यह भी देखा नहीं जाता कि इस स्थानांतरण में दो अन्याय छिपे हुए हैं, अन्याय जॉन के साथ जिसने अपनी ईमानदारी और मेहनत के बूते जो हासिल करना चाहा था, उसे नहीं मिला और अब वह खुद को वंचित (डिप्राइव्ड) समझ रहा है। यह करदाताओं के साथ भी अन्याय है, जो एक ऐसे कर्ज के भुगतान के लिए बाध्य हैं जिसका उनसे कोई वास्ता ही नहीं।

तो क्या यह कहा जा सकता है कि सरकार जॉन को जो सुविधाएं दे रही हैं, वही सुविधाएं जेम्स को दी जा रही हैं? लेकिन चूंकि यहां केवल एक ही हल मौजूद है, दो उधार नहीं दिए जा सकते। पूरी बहस फिर इस वक्तव्य पर आकर ठहर जाती है कि शुक्र है कि सरकार की वजह से दी जाने वाली वस्तु से ज्यादा कर्ज (मोर विल बी बारोड देन केन बी लेंट) लिया जा सकेगा, क्योंकि यहां हल उपलब्ध पूंजी के सकल योग का प्रतिनिधित्व करता है।

सच है, मैंने पूरी प्रक्रिया को बेहद आसान बना दिया, लेकिन इन्हीं मापदंडों पर आप कर्ज देने वाले सबसे जटिल सरकारी संस्थान को परखकर देखिए, आपको पता चल जाएगा कि परिणाम एक ही था, कर्ज का स्थानांतरण, न कि कर्ज में इजाफा । किसी भी देश में एक निश्चित कालावधि में एक तय पूंजी ही उपलब्ध होगी और यह सब कहीं न कहीं लगी होगी। एक दीवालिया कर्जदार (इनसॉल्वेंट डेटर्स) की गारंटी लेकर सरकार निश्चित तौर पर कर्जदारों की संख्या बढ़ा सकती है, ब्याज दर बढ़ा सकती है (ये सब करदाता के दम पर), लेकिन यह उधार देने वालों की संख्या या कर्ज की सकल कीमत को नहीं बढ़ा सकती।

लेकिन मुझ पर किसी निष्कर्ष की ऐसी तोहमत मत लगा दीजिए जिससे बचने के लिए मुझे ऊपर वाले की मदद लेना पड़े। मेरा यह कहना है कि कानून को कर्ज लेने की प्रवृत्ति को कृत्रिम बढ़ावा नहीं देना चाहिए, लेकिन मैं यह नहीं कहता कि इसे कृत्रिम तरीके से छिपाया जाना चाहिए। अगर हमारे काल्पनिक (हायपोथिटेकिल) तंत्र में या कहीं और, कर्ज के वितरण और उपयोग में कोई बाधा है तो कानून को उन्हें हटाने दीजिए, इससे बेहतर या इतना बेहतर कुछ नहीं हो सकता। लेकिन यह और आज़ादी ही वह बातें हैं, जिनमें समाजवाद की दुहाई देने वालों सुधारकों को कानून की मदद लेनी चाहिए।[7]

## 10. अल्जीरिया

चार वक्ता अपनी बात सुनाने के लिए असेंबली में एक साथ बोल रहे हैं। पहले वे सब एक साथ बोलते हैं, फिर एक के बाद एक। उन्होंने क्या कहा? सत्ता और फ्रांस के वैभव के बारे में बहुत सारी अच्छी बातें, कुछ हासिल करने के लिए कुछ बोने की बातें, हमारे विशाल उपनिवेश के उज्जवल भविष्य का जिक्र और अतिरिक्त आबादी के उचित वितरण की बातें, आदि, आदि, वाकपटुता के बेहतरीन नमूने, जिनका अंत हमेशा इस निष्कर्ष से सजा होता हैः

'पचास लाख फ्रैंक (उससे अधिक या कम) के लिए अपना मत दें ताकि अल्जीरिया में नए बंदरगाह और सड़कें बनाई जा सकें, ताकि हम लोगों को उन उपनिवेशों में बसा सकें, उनके लिए मकान बना सकें, खेत साफ कर सकें। अगर आप ऐसा करेंगे तो आप फ्रैंच श्रमिकों के कंधों से एक बड़ा बोझ उतार देंगे। अफ्रीका में रोजगार को प्रोत्साहन देंगे और मार्सेल में व्यापार को। यानी हर तरफ से लाभ ही लाभ होगा।'

हां, यह सच है, अगर हम इन 50 मिलियन फ्रैंक को उसी वक्त से देखें जब सरकार इन्हें खर्च करती है, अगर हम देखें कि ये कहां जा रहे हैं, यह नहीं कि वे कहां से आ रहे हैं। अगर हम करदाताओं की जेब से निकलने के बाद उसके केवल लाभ देखें, न कि उन नुकसानों को जो उसके कारण हुए हैं और सरकार की जेब में जाने से कौन-कौनसे अच्छे काम रुक गए हैं। हां, इस सीमित नजरिये से तो हर तरफ लाभ ही लाभ है। बारबेरी में मकान बना है जो दिखता है, बारबेरी में बंदरगाह बना है जो दिखता है, बारबेरी में रोजगार के अवसर उपलब्ध हुए हैं जो दिखते हैं, फ्रांस में श्रमिकों की संख्या में कमी आई है जो दिखती है, मार्सेल में कारोबारी गतिविधियां तेज हुई हैं, जो दिखती हैं।

लेकिन कुछ ऐसा भी है, जो दिखाई नहीं देता। वो यह कि सरकार द्वारा खर्च कर दिए गए 50 मिलियन फ्रैंक अब उस तरह से खर्च नहीं किए जा सकेंगे, जैसा कि करदाता उन्हें खर्च करना चाहते। सार्वजनिक खर्च से होने वाले तमाम लाभों से हमें उन तमाम हानियों को घटा देना चाहिए जो निजी खर्च नहीं किए जाने से हुई है। कम से कम इतना तो करें अगर हम यह कहने जा रहे हैं कि जेम्स गुडफेलो उन पांच फ्रैंक का कुछ भी नहीं करने वाले थे, जो उन्होंने वैध तरीके से कमाए हैं और उससे कर ले लिया गया। एक बेहूदा स्वकथन। क्योंकि अगर उसने इन पांच फ्रैंक को कमाने के लिए मेहनत की है तो वह इनको खर्च करने का संतोष भी हासिल करना चाहता था। वह अपने बगीचे को बाड़ लगवा सकता था, जो अब वह नहीं कर सकेगा, यह वो है जो देखा नहीं जाता। वह अपने खेतों निराई-गुड़ाई (मार्ल्ड) नहीं कर पाएगा, यह देखा नहीं जाता। वह और औजार खरीद सकता था, नहीं खरीद सकेगा, यह वो है जो देखा नहीं जाता। वह अच्छा खानपान, कपड़ों पर खर्च कर सकता था, अपने बेटों की पढ़ाई पर ज्यादा खर्च कर सकता था, बेटी को शादी पर ज्यादा सामान दे सकता था, लेकिन

वह यह नहीं कर सकेगा, यह देखा नहीं जाता। वह स्वयंसेवी संस्थान से जुड़ गया होता, नहीं जुड़ सकेगा, यह वो है जो देखा नहीं जाता। एक तरफ से तो उससे अपनी मेहनत की कमाई का अपने हिसाब से खर्च करने का संतोष छीन लिया गया है, दूसरी ओर गड्ढा खोदने वाला, बढ़ई, लुहार, दर्जी और यहां तक की गांव के स्कूल का मास्टर तक इन पैसों से मिलने वाले प्रोत्साहन से वंचित हो गए है, यह वो है जो अब भी नहीं देखा जाता।

हमारे नागरिक अल्जीरिया की भविष्य में समृद्धि को लेकर निश्चिंत हैं। लेकिन उन्हें उस लकवे पर भी ध्यान देना चाहिए जो इस दौरान फ्रांस को प्रभावित करने वाला है। लोग मुझे मार्सेल्स में फल-फूल रहा कारोबार दिखाते हैं, लेकिन अगर ऐसा कर से हासिल पूंजी से किया जा रहा है तो मैं दूसरी ओर इसके कारण देश के दूसरे कोनों में उतने ही तबाह होते कारोबार की ओर उनका ध्यान खींचना चाहूंगा। वे कहते हैं: 'बारबेरी भेजे गए औपनिवेशिक व्यक्ति उन देशवासियों के लिए राहत की बात है जो पीछे रह गए हैं।' मेरा जवाब है: 'ऐसे कैसे हो सकता है, लोगों को अल्जीरिया भेजने में हमने उस पूंजी से दोगुना से लेकर तीन गुना तक झोंक दिया है जो उसे फ्रांस में जीवित रहने के लिए पर्याप्त थी।'[8]

मैंने एक ही बात पर ध्यान केंद्रित किया हुआ है कि पाठक को यह बात समझ में आ जानी चाहिए कि बेहतरी का आवरण चाहे जितना सुंदर हो, सार्वजनिक राशि का व्यय अपने अंदर कोई न कोई बुराई छिपाए हुए होता है। मैं अपनी काबिलियत के इस्तेमाल से यही कोशिश करुंगा कि पाठक को एक नहीं दोनों ही पहलू दिखाई देने लग जाएं।

जब सार्वजनिक व्यय का प्रस्ताव पेश किया जाता है, तो उसके गुण-दोषों की परख की जानी चाहिए, उसके रोजगार को होने वाले कथित फायदे के इतर। क्योंकि इस दिशा में कोई भी सुधार महज भ्रामक होता है। इस मामले में सार्वजनिक व्यय जो करता है वह निजी व्यय भी कर सकता है। इसलिए रोजगार का मसला अप्रासंगिक हो जाता है।

अल्जीरिया पर किए गए सार्वजनिक व्यय की उपयोगिता का मूल्यांकन इस निबंध की तय सीमा से बाहर की बात है।

लेकिन मैं एक आम निरीक्षण से खुद को रोक नहीं पा रहा हूं। वो यह कि करों की मदद से किए गए खर्च को कभी भी आर्थिक लाभ की संज्ञा नहीं दी जा सकती। क्यों? इसका कारण पेश है।

पहली बात तो यह कि कई बार न्याय खुद से ही पीड़ित होता है। चूंकि जेम्स गुडफेलो ने 100 सोस अपनी पसंद की किसी बात पर खर्च करने के लिए कमाए थे, उसका कुढ़ना स्वाभाविक है। उसे यह अहसास होता है कि कर ने उससे उसका संतोष छीनकर किसी और के खाते में डाल दिया है। अब यह कर लगाने वालों की जिम्मेदारी है कि वह इसके लिए

कोई ठोस तर्क पेश करे। हमने देखा है कि सरकार ऐसे में यह कहकर एक तिरस्कार भरा कारण देती है, 'इन 100 सोस से मैं किसी व्यक्ति को काम देने जा रही हूं,' ऐसे में जेम्स गुडफेलो (जैसे ही उसे यह पता चलेगा) कहने से नहीं चूकेगा, 'हे भगवान! काम के लिए 100 सोस तो मैंने ही उन्हें दे दिए होते।'

सरकार द्वारा दिया गया यह तर्क एक बार खारिज हो जाने के बाद दूसरे पूरी बेहयाई से अपना पक्ष रखने लगते हैं, और सरकारी खजाने और जेम्स के बीच की बहस आसान हो जाती है। अगर सरकार उसे कहती है, 'इस 100 सोस को उस पुलिसकर्मी पर खर्च किया जाएगा जो तुम्हें सुरक्षा की जरूरत से राहत देता है, तुम्हारे द्वारा इस्तेमाल राहों को फुटपाथ देने पर खर्च होगा, उस मजिस्ट्रेट को दिया जाएगा जो तुम्हारी जायदाद की रक्षा और तुम्हारी स्वतंत्रता के सम्मान को कायम रखता है, उस सैनिक को दिया जाएगा जो हमारे देश की सीमाओं की रखवाली करता है।' जेम्स गुडफेलो एक शब्द कहे बगैर दे देगा या हो सकता है ऐसा सोचना मेरी गलती हो। लेकिन अगर सरकार कहे, 'तुमसे ही लिए गए 100 सोस में से एक प्रीमियम के तौर पर तुमको लौटा दिया जाएगा, अगर तुमने अपने खेत खुद जोते हैं, या तुम्हारे बेटे को वह सीखने के लिए यह दिया जाएगा जो तुम उसे सिखाना नहीं चाहते या फिर यह किसी कैबिनेट मंत्री को उसके आलीशान डिनर में 101वीं डिश जोड़ने के लिए दे दिया जाएगा। तुमसे यह लेकर अल्जीरिया में अल्जीरिया में छोटे मकान बनाए जाएंगे, 100 सोस और लिए जाएंगे ताकि वहां रहने वाले लोगों की रक्षा के लिए सैनिक तैनात किया जा सके, उस सैनिक पर निगरानी के लिए एक अधिकारी की तैनाती के लिए और 100 सोस लिए जाएंगे, आदि, आदि।' मुझे लगता है कि मैं बेचारे जेम्स गुडफेलो को यह चिल्लाते हुए सुन रहा हूं, 'यह कानूनी व्यवस्था तो जंगल के कानून की तरह है!' और सरकार इस आपत्ति को पहले से ही भांपकर क्या करती है? वह सब-कुछ गड्डमड्ड कर देती है। वह एक ऐसा तर्क पेश कर देती है जिसका सवाल पर कोई भी असर न होः वह 100 सोस के रोजगार पर पड़ने वाले प्रभाव की बात करती है, यह उस रसोईये और व्यापारी की बात करती है जो कैबिनेट मिनिस्टर के भोज की जरूरतों को पूरा करते हैं, वह हमें बताती है कि कैसे एक उपनिवेशक, एक जनरल, एक सिपाही पांच फ्रैंक पर निर्भर है, संक्षेप में वह हमें वह सब बताती है, जो देखा जाता है। जब तक जेम्स गुडफेलो ने इसके आगे जो नहीं देखा जाता जोड़ना नहीं सीखा है, वह यूं ही ठगा जाता रहेगा। यही वजह है कि मुझे यह सब बार-बार और जोर-जोर से सिखाना पड़ रहा है।

इस हकीकत से कि सार्वजनिक व्यय से रोजगार में बढ़ोतरी की बजाय उनका स्थानांतरण हो जाता है, ऐसे खर्च की तुलना में उनके परिणाम एक दूसरे और ज्यादा गंभीर आपत्ति को

जन्म दे देते हैं। रोजगार का पुनर्निर्धारण श्रमिकों को अपने मूल स्थान से हटा लेता है, इससे वह प्राकृतिक नियम प्रभावित होता है जो पूरी दुनिया में आबादी के संतुलन को साधता है। जब 50 मिलियन फ्रैंक करदाता के ही पास रहते हैं, जो कि पूरे देश में फैला हुआ है, तो पैसा फ्रांस की 40 हजार म्युनिसिपालिटियों के काम आता है। यह हर व्यक्ति को अपनी जमीन से जोड़े रखने का काम करता है, यह अधिक से अधिक श्रमिकों और उद्योगों के बीच वितरित होता है। अब अगर सरकार नागरिकों से यह 50 मिलियन फ्रैंक लेकर उन्हें इकट्ठा करके किसी तय स्थान पर खर्च करती है, तो यह किसी अन्य स्थान पर काम से वंचित श्रमिकों के अनुपात में ही श्रमिक उस स्थान पर ले आएगी। देश से बाहर जाने वाले श्रमिकों की समान संख्या, एक चलायमान जनसंख्या, एक अघोषित वर्ग और मैं यह कहने की भी हिमाकत करुंगा, एक खतरनाक वर्ग, जब पूंजी खत्म हो जाए तो। लेकिन यही होता है (और मैं अपने विषय पर लौटना चाहूंगा): यह तेज गतिविधि, कम समय में होने के कारण सबका ध्यान आकर्षित करती है और देखी जाती है। लोग इस प्रक्रिया की दिलकशी पर तालियां बजाते हैं और इसकी पुनरावृत्ति और इसमें इजाफे की मांग करते हैं। जो नहीं देखा जाता है वो यह कि बाकी के फ्रांस में ज्यादा उपयोगी रोजगारों को पनपने का मौका ही नहीं मिला।

### 11. मितव्ययिता और विलासिता

ऐसा नहीं है कि केवल सार्वजनिक व्यय के ही मामलों में जो देखा जाता है वह अपने पीछे जो देखा नहीं जाता को छिपा लेता हो। राजनीतिक अर्थशास्त्र की आधी बातों को पृष्ठभूमि में ही रखकर यह देखे और न देखे जाने की प्रक्रिया एक बेवजह का झूठा नैतिक स्तर का मापदंड तैयार कर देती है। यह देश का नजरिया कुछ ऐसा बना देती है कि उसे नैतिक हित और भौतिक हित को एक-दूसरे के विरोधी के तौर पर देखा जाने लगता है। इससे ज्यादा निरुत्साहित कर देने वाला या ज्यादा दुखद और क्या होगा? देखिएः

परिवार का कोई ऐसा पिता नहीं हो सकता जो बच्चों की पढ़ाई, अच्छे प्रबंधन, आर्थिक और मितव्ययिता में अच्छा होकर खर्च में धैर्य न बरतता हो।

ऐसा कोई धर्म नहीं है जो डींग हांकने और विलासिता को झिड़कता न हो। यह सब तो ठीक है, लेकिन इन लोकोक्तियों से ज्यादा लोकप्रिय भला क्या हैः

'बचत तो लोगों का खून चूसने की तरह है।'

'बड़े लोगों की विलासिता से ही छोटे लोगों को सुकून मिलता है।'

'फिजूलखर्ची करने वाले भले ही खुद को बरबाद कर देते हैं, लेकिन वो देश को रईस बना देते हैं।'

'यह रईसों की कमाई का अतिरिक्त ज्यादा हिस्सा ही है जिससे गरीब लोगों को रोजी-रोटी मिलती है।'

निश्चित तौर पर यहां नैतिक सोच और आर्थिक सोच के बीच एक निंदनीय विरोधाभास है। ऐसे कितने सुविख्यात लोग होंगे इस इस टकराव का खुलासा करने के बाद इसे गंभीरता से लेते होंगे। यही वह बात है जो मैं कभी भी नहीं समझ सका, क्योंकि मेरी राय में किसी भी इनसान के लिए इससे ज्यादा दुखद कुछ नहीं हो सकता कि वह किसी एक ही व्यक्ति के भीतर एक साथ विरोधाभासी प्रवृत्तियों को देखे। ऐसे में तो मानव जाति एक प्रवृत्ति के चरम और दूसरे के भी चरम से पतन का शिकार हो जाएगी। अगर मितव्ययिता है तो वह भीषण लालसा में बदल जाएगी और अगर फिजूलखर्च होगा तो वह नैतिक कंगाली का शिकार हो जाएगा।

मोंडोर और उसके भाई अरिस्ते ने अपनी पैतृक संपत्ति को बांट लिया था। हर एक के पास अब 50 हजार फ्रैंक सालाना की आय थी। मोंडोर व्यावहारिक और परोपकारी प्रवृत्ति का है। वह अतिव्ययी है। वह साल में कई बार अपना फर्नीचर बदलता है और अपनी घोड़ागाड़ी हर माह बदलता है। उसकी धन खर्च करने के लिए नित नये तरीके खोज निकालने की प्रवृत्ति लोगों के बीच चर्चा का विषय होती है। संक्षेप में, बालजाक और अलेक्जेंडर ड्यूमास जैसी हस्तियों के खर्च करने के बड़े जिगर को भीवह फीका कर देता है।

वो जहां जाता है तारीफों के पुल तैयार रहते हैं। 'हमें मोंडोर के बारे में बताओ! मोंडोर की उम्र लंबी हो! वह कामकाजी लोगों के हितों की रक्षा करने वाला है। वह तो लोगों के लिए देवदूत की तरह है। यह सच है कि वह विलासिता में डूबा रहता है, राहगीरों पर कीचड़ उछालता चलता है, उसके आत्मसम्मान और मानव गरिमा को इससे ठेस लगती है....लेकिन इसका क्या? अगर वह खुद को अपने श्रम से उपयोगी नहीं बना पा रहा है, तो धन की मदद से ऐसा कर ले रहा है। वह पूंजी को चलन में लाता है। उसके घर के परिसर में कभी भी कारोबारियों की कमी नहीं होती और वे हर बार संतुष्ट होकर ही जाते हैं। क्या लोग यह नहीं कहते कि सिक्का इसीलिए गोल होता है ताकि वह यहां से वहां तक आसानी से लुढ़क सके?'

एरिस्ते की जीने का अंदाज़ बिलकुल ही अलग है। वह भले ही घमंडी न हो, लेकिन वह व्यक्तिवादी तो है ही, क्योंकि वह अपने धन को विवेकपूर्ण तरीके से खर्च करता है। मजे भी लुटता है तो काफी संयत और सीमित। वह अपने बच्चों के भविष्य के बारे में सोचता है, एक शब्द में कहें तो वह बचत करता है।

और अब आइए मैं आपको बताता हूं कि लोग उसके बारे में क्या कहते हैं!

'ऐसी रईसी का क्या फायदा, ऐसे कंजूस-दमड़ीचूस का? यह ठीक है कि उसके सादगी भरे जीवन में कुछ प्रभावित करने वाला और मर्मस्पर्शी है, और वह मानवीय, परोपकारी और उदार भी है। लेकिन वह हिसाब लगाता है। वह अपनी पूरी कमाई को खर्च नहीं करता। उसका घर हमेशा दमकता नहीं है और न ही वहां लोगों का हुजूम ही उमड़ता है। आखिर उसका कारपेट बनाने वालों, घोड़ागाड़ी बनाने वालों, घोड़े के व्यापारियों, कंफेक्शनरी वालों को क्या फायदा?'

नैतिकता के लिए घातक ये सभी निष्कर्ष केवल उसी बात पर आधारित है जो आंखों को दिखाई देती हैः फिजूलखर्च भाई का खर्च और दूसरी बात जो नजर आने से रह जाती है वह मितव्ययी भाई का उतना ही या उससे भी ज्यादा खर्च।

लेकिन सामाजिक व्यवस्था के दैवी शक्ति भरे आविष्कारक ने बातों की कुछ ऐसी सराहनीय जमावट की है कि हर बात, राजनीतिक अर्थशास्त्र और नैतिकता, टकराव की बजाय मेलमिलाप भरे रूप में दिखते हैं। इसलिए एरिस्ते की बुद्धिमत्ता न केवल ज्यादा मूल्यवान है, बल्कि मोंडोर की गलती से ज्यादा लाभदायक भी है।

और मैं जब ज्यादा लाभदायक होने की बात करता हूं, तो मैं इसके केवल अकेले एरिस्ते या आमतौर पर समाज के लिए फायदेमंद होने की बात नहीं करता, बल्कि यह वर्तमान श्रमिकों,वर्तमान उद्योग के लिए और ज्यादा फायदेमंद है।

इसे साबित करने के लिए बेहतर होगा कि पहले हम दिमाग की आंखों को खोलकर इनसान के हर कदम के उन छिपे हुए परिणामों को देखें जो हमारे शरीर पर लगी आंखें नहीं देख पातीं।

हां, मोंडोर की फिजूलखर्ची के परिणाम हर आंख से देखे जा सकते हैं, हर कोई उसकी कार को देख सकता है, आलीशान घोड़ागाड़ी, बग्गी, उसके मकान की छतों पर लगी पेंटिंग्स, महंगे कारपेट, उसके मकान की भव्यता को देखा जा सकता है। सभी जानते हैं कि उसके महंगे और आला नस्ल के घोड़े रेसकोर्स पर दौड़ते हैं। पेरिस में उसके मकान पर जब कोई दावत होती है तो लोग घरों के छज्जों पर आकर उसकी शानशौकत को देखते हैं। लोग एक-दूसरे को कहते हैं, 'क्या शानदार व्यक्ति है, वह अपनी कमाई को बचाने की बजाय, शायद अपनी पूंजी में छेद कर रहा है।' यह वो है जो देखा जाता है।

एरिस्ते की आय का क्या होता है यह श्रमिकों के हितों के लिहाज से देख पाना आसान काम नहीं है। हालांकि अगर हम खोजबीन करें तो हमें पता चलेगा कि यह पूरा धन, अंतिम छदाम तक, श्रमिकों को रोजगार देने में जाता है, उतना ही जितना कि मोंडोर का धन। यहां केवल एक ही अंतर हैः मोंडोर का बेवकूफी भरे अंदाज में किया जा रहा खर्च धीर-धीरे कम

होता जाएगा और एक जगह आकर उसका अंत हो जाएगा, जबकि एरिस्ते का समझदारी भरा खर्च साल दर साल चलता ही रहेगा।

और अगर ऐसा है तो निश्चित ही जनता का हित नैतिकता के साथ है।

एरिस्ते अपने और अपने घर के लिए साल में 20 हजार फ्रैंक खर्च करता है। अगर यह भी उसे खुश नहीं रख सकता तो वह समझदार कहलाने के काबिल नहीं है। वह गरीबों को होने वाली परेशानियों से द्रवित होता है, वह उनको इस दुविधाजनक परिस्थिति से निकालने के लिए खुद को नैतिक तौर पर जिम्मेदार मानता है। और इसलिए वह 10 हजार फ्रैंक परोपकार के काम पर खर्च करता है। कारोबारियों, उत्पादकों और किसानों के बीच उसके दोस्त हैं, जो फिलहाल आर्थिक तौर पर शर्मिंदगी का सामना कर रहे हैं। वह उनसे पूछताछ करता है ताकि समझदारी और प्रभावशाली तरीके से उनकी मदद कर सके। इस काम के लिए वह 10 हजार फ्रैंक अलग रखता है। आखिरकार वह यह भी नहीं भूलता कि उसकी बेटियों की शादी, बेटों के भविष्य के लिए पूंजी की दरकार है, इसलिए वह 10 हजार फ्रैंक की बचत और निवेश की जिम्मेदारी अपने पर लाद लेता है।

तो इस तरह से उसकी आय का हिसाब कुछ यूं हुआः

1. निजी खर्च.....20,000 फ्रैंक
2. परोपकार.....10,000 फ्रैंक
3. दोस्तों की मदद.....10,000 फ्रैंक
4. बचत.....10,000 फ्रैंक

अगर हम इन सभी बातों की समीक्षा करें, तो हम देखेंगे कि एक छदाम भी राष्ट्रीय उद्योग के समर्थन में जाने से नहीं बचता।

1. निजी खर्चः यह उन कामगारों और दुकानदारों पर खर्च होता है, इसके परिणाम ठीक मोंडोर द्वारा खर्च की जाने वाली राशि जितना ही है। यह तो जाहिर सी बात है, सो इसकी और चर्चा जरूरी नहीं।

2. परोपकारः ये 10 हजार फ्रैंक भी उद्योग की मदद को ही जाएंगे, वह बेकरी वाले को जाएंगे, कसाई, दर्जी, फर्नीचर डीलर को जाएंगे। फर्क है तो बस इतना कि ये ब्रेड, मांस और कपड़े सीधे एरिस्ते के काम नहीं आएंगे, लेकिन उन लोगों के काम आएंगे जिनको उसने अपनी जगह मदद की है। अब इस एक उपभोक्ता से दूसरे उपभोक्ता को स्थानांतरण से आमतौर पर उद्योग को कोई फर्क नहीं पड़ता। एरिस्ते खुद 100 सोस खर्च करे या किसी गरीब व्यक्ति को यह खर्च करने को कहे, बात तो वही है।

3. दोस्तों की मदद: वह दोस्त जिसे एरिस्ते ने 10 हजार फ्रैंक दिए हैं, इस पूंजी को जमीन में गाड़ने के लिए नहीं ले रहा। यह हमारी परिकल्पना का खंडन होगा। वह तो इसे कुछ सामान खरीदने या अपना कर्ज चुकाने के लिए खर्च करेगा। पहले मामले में उद्योग को बढ़ावा मिलता है। क्या कोई यह कहने की हिम्मत दिखाएगा कि मोंडोर द्वारा एक अच्छी नस्ल का घोड़ा खरीदने में खर्च 10 हजार फ्रैंक और एरिस्ते या उसके दोस्त द्वारा कपड़ा खरीदने के लिए खर्च 10 हजार फ्रैंक में से किसी में ज्यादा फायदा हुआ है? अगर यह धन कर्ज चुकाने के लिए खर्च किया जाता है तो एक तीसरा व्यक्ति सामने आता है कर्जदाता। उसे ये 10 हजार फ्रैंक मिल जाएंगे। यह भी तय है कि वह कर्जदाता भी इस धन का इस्तेमाल किसी न किसी उद्योग की मदद के लिए ही करेगा। अपनी फेक्टरी, अपने कारोबार या प्राकृतिक संसाधनों की तलाश पर।

4. बचत: यहां 10 हजार फ्रैंक बचाए गए हैं और यही वह स्थान है जहां कला, उद्योग और श्रमिकों को रोजगार के मामले में मोंडोर, एरिस्ते से श्रेष्ठ दिखाई देता है। हालांकि नैतिक तौर पर एरिस्ते खुद मोंडोर से श्रेष्ठ है।

वास्तविक शारीरिक दर्द के बिना यह संभव ही नहीं है कि मैं प्रकृति के महान नियमों के बीच ऐसा विरोधाभास देखता हूं। अगर मानव जाति को दोनों के बीच से चुनने का मौका दिया जाता, एक जो हितों को ठेस पहुंचाता है दूसरा जो अंतःकरण को, हमें उसके भविष्य को लेकर घोर निराशा ही देखने को मिलेगी। खुशी की बात है कि ऐसा नहीं है।[9] एरिस्ते को अर्थशास्त्र के साथ-साथ नैतिक तौर पर अपनी श्रेष्ठता साबित करते देखने के लिए हमें केवल इस सहानुभूति जताने वाली स्वयंसिद्ध बात को समझना होगा, जो कि असत्य की तरह दिखने मात्र से गलत नहीं हो जातीः बचत करना खर्च करना है।

एरिस्ते का 10 हजार फ्रैंक की बचत करने का मकसद क्या है? या वह 100 -100 सोस के दो हजार टुकड़े अपने बगीचे में गाड़कर रखना चाहता है? नहीं, बिलकुल नहीं। वह अपनी जमा पूंजी और आय दोनों ही बढ़ाना चाहता है। यही वजह है कि वह इनसे निजी संतोष देने वाली कोई वस्तु नहीं खरीदता, बल्कि इसे जमीन का टुकड़ा, एक मकान, सरकारी बांड, उद्योग खरीदने या शायद इसे किसी दलाल या बैंकर के पास निवेश में लगा देता है। इन सभी काल्पनिक इस्तेमालों के बारे में सोचिए और आपको यकीन हो जाएगा कि खरीदारों या बेचने वालों की मध्यवर्ती संस्थाओं के जरिये यह पूंजी उद्योगों को ही जाएगी, ठीक वैसे ही जैसे मानो एरिस्ते ने अपने भाई के उदाहरण को देखते हुए फर्नीचर, गहनों और घोड़ों की बजाय यह दूसरा विकल्प चुना है।

क्योंकि जब एरिस्ते इन 10 हजार फ्रैंक से जमीन का टुकड़ा या बांड लेता है तो वह ऐसा इसलिए करता है क्योंकि उसे नहीं लगता कि इस राशि को खर्च किया जाना चाहिए। शायद यही बात है जिससे आप उससे नाराज हैं।

लेकिन, इसे इस तरह देखिए कि जो व्यक्ति जमीन का टुकड़ा या बांड बेच रहा है, उन 10 हजार फ्रैंक को किसी न किसी तरह से तो खर्च करेगा ही न।

इसलिए खर्च तो दोनों ही मामलों में किया गया है, चाहे वो एरिस्ते हो या फिर वह जो उससे पूंजी पा रहा है।

श्रमिक वर्ग और उद्योग को इससे मिलने वाली मदद के नजरिये से तो अब यहां एरिस्ते और मोंडोर के व्यवहार में केवल एक ही अंतर रह गया है। मोंडोर ने जो खर्च किया है वह उसने और उसके इर्द-गिर्द के लोगों ने किया है, यह देखा जाता है। एरिस्ते के मामले में यह खर्च मध्यवर्ती संस्थाओं द्वारा किया जा रहा है और उससे दूर किया जा रहा है, यह देखा नहीं जाता। लेकिन वास्तविकता में जो कोई भी प्रभाव को कारण से जोड़कर देख सकता है, यह जान लेगा कि जो देखा नहीं जाता वो भी उतना ही खरा है जितना कि जो देखा जाता है। यह इस बात को भी साबित करता है कि दोनों ही मामलों में पूंजी चलन में है और अब इसमें से समझदार भाई और फिजूलखर्च भाई दोनों के पास कम-ज्यादा नहीं है।

इसलिए यह कहना गलत होगा कि मितव्ययिता ही उद्योगों को नुकसान पहुंचाने वाला असली कारण है। इस मामले में तो यह विलासिता जितना ही फायदेमंद है।

लेकिन अगर हम अपनी सोच को इस पल की बजाय लंबी अवधि को लेकर सोचें तो यह कितना साफ नजर आएगा।

दस वर्ष बीत चुके हैं। मोंडोर का क्या हुआ और उसकी किस्मत और उसकी लोकप्रियता का? वह सब गायब हो चुके हैं। मोंडोर बरबाद हो चुका है। हर साल अर्थव्यवस्था को 50 हजार फ्रैंक देने वाला मोंडोर अब शायद व्यवस्था पर ही बोझ बन गया है। अब वह दुकानदारों में उतना लोकप्रिय नहीं है, न ही वह कला और उद्योग को प्रोत्साहित करने वाले के तौर पर जाना जाता है, श्रमिकों के लिए भी वह अच्छा नहीं है और न ही अपने उत्तराधिकारियों के लिए, जिन्हें उसने संकट में डाल दिया है।

इन्हीं दस सालों के बाद, एरिस्ते न केवल अपनी कमाई को चलन में बनाए हुए है, बल्कि वह हर साल ज्यादा से ज्यादा कमाई का योगदान भी दे रहा है। वह राष्ट्रीय संपदा में योगदान दे रहा है, यानी कि उस फंड में जिससे पारिश्रमिक आता है और चूंकि श्रमिकों की मांग इस फंड पर निर्भर करती है, वह कामकाजी लोगों के पारिश्रमिक में इजाफे में भी

योगदान दे रहा है। अगर उसकी मौत भी हो जाती है तो वह ऐसे बच्चे छोड़ जाएगा जो कि तरकी और सभ्यता के विकास में योगदान देना जारी रखेंगे।

नैतिक तौर पर मितव्ययिता की फिजूलखर्ची पर श्रेष्ठता संदेह से परे है। यह सोचना राहत की बात है कि आर्थिक दृष्टिकोण से यह उस व्यक्ति को भी श्रेष्ठ बनाती है जो बातों के तात्कालिक असर की बजाय दूरगामी असर पर नजर रखता है।

**12. रोजगार का अधिकार और लाभ कमाने का अधिकार**

'भाईयों, आओ अपना आंकलन कर मेरे लिए अपनी कीमत पर काम करो।' यह रोजगार का अधिकार है, आधारभूत या पहले दर्जे का समाजवाद।

'भाईयों, आओ अपना आंकलन कर मेरे लिए मेरी कीमत पर काम करो।' यह लाभ कमाने का अधिकार है, संशोधित या दूसरे दर्जे का समाजवाद।

दोनों ही देखे जाने वाले प्रभाव के कारण चलते हैं। ये दोनों ही नहीं देखे जाने वाले प्रभावों के कारण खत्म हो जाएंगे।

जो देखा जा रहा है, वह काम है और समाज पर करों का बोझ डालकर उत्पन्न लाभ है। जो नहीं देखा जा रहा है, वो है काम और लाभ जो इसी पूंजी से आएगा, अगर इसे करदाता के ही हाथ में रहने दिया जाए।

1848 में एक पल के लिए रोजगार के अधिकार के दो चेहरे दिखाई दिए। आम आदमी की सोच में इसे खत्म करने के लिए इतना पर्याप्त था।

इनमें से एक चेहरे का नाम थाः नेशनल वर्कशॉप।

दूसराः 45 सेंटिम्स

[फरवरी की क्रांति से आई नई सरकार ने बेरोजगारी के संकट से निपटने के लिए नेशनल वर्कशॉप को प्रायोजित किया और अप्रत्यक्ष कर में और 45 सेंटिम्स का इजाफा हो गया। यह वर्कशॉप बेरोजगारी समस्या से निपटने में नाकाम उपाय साबित हुई। जरा से या बिना किसी काम के ही भुगतान का हास्यास्पद तंत्र। जब नेशनल वर्कशॉप को समाप्त करके बेरोजगारों को सेना, सार्वजनिक काम या निजी उद्योगों में काम देने का प्रयास किया गया तो पेरिस में काम कर रहे लोग सरकार की 'रोजगार के अधिकार' को लेकर दगाबाजी पर नाराज हो गए। उन्होंने क्रांति कर दी और जून 1849 में भीषण लड़ाई के बाद ही यह थम सकी।]

लाखों लोग हर रोज रुई डी रिवोली से नेशनल वर्कशॉप्स में जाने लगे। यह सिक्के का खूबसूरत पहलू था।

लेकिन दूसरी ओर देखिए क्या हुआ। किसी की जेब से लाखों फ्रैंक बाहर आने के लिए जरूरी है कि पहले यह उनकी जेब में आएं। यही वजह रही कि रोजगार के अधिकार के संघर्ष के नेताओं ने करदाताओं से संवाद साधा।

अब किसानों ने कहा, 'मुझे 45 सैंटिम्स देना ही होंगे। तब मैं अपने कपड़ों से वंचित हो जाऊंगा, खेतों की निराई-गुड़ाई नहीं कर सकूंगा। अपने मकान की मरम्मत नहीं कर सकूंगा।'

और सेवाएं देने वालों ने कहा, 'चूंकि हमारा बॉस नए कपड़े नहीं खरीद पा रहा है, इसलिए दर्जी के लिए कम काम होगा, चूंकि वह अब खेतों की निराई-गुड़ाई नहीं कर पा रहा, गड्ढे खोदने वालों के लिए काम भी कम हो जाएगा, चूंकि वह अब अपने घर की मरम्मत नहीं करवाएगा, इसलिए बढ़ई और कुशलराज (मेसन) के लिए भी काम कम ही रहेगा।'

इसलिए यह साबित हो गया कि आप पूंजी के एक ही बार इस्तेमाल से दो बार लाभ नहीं कमा सकते। साथ ही सरकार ने जिस रोजगार के लिए भुगतान किया वह करदाता द्वारा वैसे भी भुगतान किए जाने वाले काम के ऐवज में ही किया था। यह रोजगार के अधिकार की समाप्ति था, जिसे एक छलावे के साथ-साथ एक अन्याय के तौर पर भी देखा गया।

हालांकि लाभ कमाने का अधिकार, जो कुछ और नहीं रोजगार के अधिकार का ही अतिरेकी स्वरूप है, आज भी जिंदा है और फल-फूल रहा है।

क्या नहीं लगता कि संरक्षणवादियों (प्रोटेक्शनिस्ट) ने समाज के लिए जो भूमिका तैयार की है वह शर्मनाक है?

वह समाज से कहता हैः

'तुम्हें मुझे काम देना ही चाहिए, इससे भी ज्यादा, लाभदायक काम। मैंने बेवकूफी करते हुए एक ऐसे उद्योग को चुन लिया था, जो मुझे 10 फीसदी नुकसान दे रहा था। अगर आप मेरे हमवतन करदाताओं पर 20 फ्रैंक का कर लगाकर मुझे कर के भुगतान से राहत दे दोगे तो मेरा नुकसान फायदे में बदल जाएगा। अब लाभ एक अधिकार है और इसे देना तुम्हारी जिम्मेदारी।'

वह समाज जो इस तर्क को सुन लेगा, वह उसे संतुष्ट करने के लिए अपने पर कर थोप लेगा। लेकिन इसका यह मतलब कतई नहीं है कि एक उद्योग के नुकसान की भरपाई कर देने से काम हो जाएगा अगर इस भरपाई का बोझ दूसरों पर डाल दिया जाता है। मेरी राय में ऐसे समाज पर ऐसा बोझ होना ही चाहिए।

इस तरह से हमने मेरे द्वारा चर्चित कई विषयों से देखा कि राजनीतिक अर्थशास्त्र की जानकारी नहीं होने का मतलब खुद को तुरंत प्रभावों से हतप्रभ करना है। जबकि राजनीतिक

अर्थशास्त्र को जानने का मतलब है, तमाम प्रभावों, तात्कालिक और भविष्य के योग को देखना।[10]

मैं यहां इस परीक्षा के लिए कई सवाल पेश कर सकता हूं। लेकिन मैं ऐसा करने से खुद को रोक रहा हूं क्योंकि इन सभी का निरुपण (डेमांस्ट्रेशन) एक जैसा और नीरस हो जाएगा। मैं चेट्यूब्रायंड [*विकोम्ते फ्रैंकॉयस रव्ने डी चेट्यूब्रायंड (1766-1848), फ्रांसीसी साहित्य में रुमानी आंदोलन के अग्रदूत थे, साथ ही राजनीति में वो बोरबोन घराने का प्रतिनिधित्व करते थे। नेपोलियन के पतन के बाद उन्होंने दोबारा खड़े किए गए बोरबोन साम्राज्य का इंग्लैंड और जर्मनी में राजदूत के तौर पर प्रतिनिधित्व किया और वे विदेशी मामलों के मंत्री भी रहे। उनकी सबसे प्रमुख रचनाएं थीं द जीनियस ऑफ क्रिश्चियनिटी और मेमॉयर्स फ्रॉम बियोंड द टोम्ब।*] द्वारा इतिहास के बारे में कही गई बात को राजनीतिक अर्थशास्त्र पर लागू करके बात का समापन करता हूं:

इतिहास में भी दो ही परिणाम देखने को मिलेंगेः एक तुरंत जिसे तत्काल पहचाना जा सकता है, दूसरा दूरगामी और पहले जिसकी कल्पना भी नहीं की गई थी। ये परिणाम हमेशा एक-दूसरे के विरोधाभासी होते हैं। पहला जहां हमारी अल्पकालीन समझदारी से आता है, तो दूसरा दूरगामी समझदारी से। इंसान के काम कर लेने के बाद दैविक घटना होती है। इंसान के पीछे भगवान उठ खड़ा होता है। उस दैविक समझदारी से आप जितना चाहे इनकार कर दें, उसके काम में यकीन न करें, उस दैविक शब्द में जिसे आम आदमी 'परिस्थितियों की शक्ति' या 'कारण' बताता है, लेकिन किसी भी स्थापित तथ्य को देख लीजिए वह हमेशा ही उस विपरीत नैतिक और न्यायपूर्ण नतीजे पर पहुंच जाएगा, जिसकी शुरूआत में कल्पना भी नहीं की गई थी।

*(चेट्यूब्रायंड, मेमॉयर्स फ्रॉम बिहाइंड द टोम्ब)*

**नोट्स**

1. जुलाई 1850 में प्रकाशित यह बास्तियात का लिखा अंतिम पैम्फ्लेट है। जनता से इसका वादा एक साल से भी ज्यादा पहले किया गया था। इसका प्रकाशन उनके घर को रयू डी चोईस्यूल से रयू डीअलगेन स्थानांतरित करने के दौरान पांडुलिपियों के गुम हो जाने के कारण विलंबित हो गया था। काफी लंबी और अनुपयोगी खोज के बाद उन्होंने पूरा पैम्फ्लेट ही नये सिरे से लिखने का फैसला किया। उन्होंने इसके लिए राष्ट्रीय असेंबली में दिए गए कुछ ताजा भाषणों का इस्तेमाल किया। जब यह युद्ध स्तर का काम समाप्त हो गया, उन्होंने अपने ही काम की तीखी आलोचना करते हुए दूसरी पांडुलिपि को भी आग में फेंक दिया और जो लिखा वही यहां प्रकाशित किया गया है-संपादक।

2. देखें *इकानॉमिक हार्मोनीज का* 10वां अध्याय देखें-संपादक।

3. देखें इकानॉमिक हार्मोनीज का तीसरा अध्याय देखें-संपादक।

4. लेखक हमेशा से उस सच के आलोचक रहे हैं, जो सार्वभौमिक स्वीकृति से जुड़ा हुआ है। खास तौर पर इकानॉमिक *सोफिज्म्स* का 13वां अध्याय, छठे अध्याय के अंतिम निबंध (फ्रांसीसी संस्करण) और इकानॉमिक हार्मोनीज में "मोरेलिटिज ऑफ वेल्थ" शीर्षक वाले छठे अध्याय का परिषिष्ट-संपादक।

5. देखें खंड पांच के पेज नंबर 86 और 94 (फ्रांसीसी संस्करण), इकानॉमिक हार्मोनीज की पहली सीरीज के अध्याय 14 और 18, साथ ही इसी खंड का अध्याय 7-संपादक।

6.देखें इकानॉमिक हार्मोनीज का अध्याय तीन और आठ-संपादक।

7. देखें खंड पांच के पेज 282 (फ्रांसीसी संस्करण) का *इंटरेस्ट फ्री क्रेडिट* पर 12वें पत्र का अंतिम हिस्सा-संपादक।

8. आदरणीय युद्धमंत्री ने हाल ही में इस बात की पुष्टि की है कि अल्जीरिया भेजे गए हर एक व्यक्ति पर 8 हजार फ्रैंक का खर्च आया है। अब यह बात तय हो गई है कि इससे जुड़े गरीब लोग फ्रांस में ही चार हजार डॉलर में भी बेहतर जीवन बिता सकते थे। मैं यह जानना चाहूंगा कि आप एक व्यक्ति और दो लोगों के जीने का साधन छीनकर कैसे फ्रांसीसी लोगों का भला कर सकते हैं।

9. देखें नोट्स 5 *सुप्रा* -संपादक।

10. अगर किसी कदम के सारे परिणाम भी उसके लेखक पर ही दिखाई देने लगें तो हमें जल्द ही हमारी शिक्षा मिल जाएगी। लेकिन मामला यह नहीं है। कई बार दिखाई देने वाली अच्छाईयां हमारे लिए होती हैं और न दिखाई देने वाले बुरे प्रभाव दूसरों के लिए होते हैं, जिससे यह सब ही कुछ ज्यादा ही अदृश्य सा हो जाता है। इसलिए हमें उन लोगों की

प्रतिक्रिया के लिए रुकना चाहिए जिन पर इस कदम का बुरा प्रभाव पड़ा है। कई बार इसमें कुछ ज्यादा वक्त लग जाता है और यही गलती के राज को कुछ लंबा खींच देता है।

**लेखक का अप्रकाशित अंश**

(अंग्रेजी संस्करण के **पेज क्रमांक** 51-80 **के** लिए नोट)

एक व्यक्ति कोई ऐसी बात करता है जो अच्छे के 10 और बुरे प्रभाव के 15 के मूल्य के बराबर होने के लिहाज से, उसके 30 साथियों में इस तरह से बंटता है कि हर किसी को केवल आधा ही मिल पाता है। इसमें कुल मिलाकर घाटा ही है और इसकी प्रतिक्रिया तो तय सी है। हमें यह मानकर ही चलना चाहिए कि इसे आने में कुछ देर लगेगी क्योंकि बुरे प्रभाव जनता में बंट गए हैं और अच्छे प्रभाव एक बिंदु पर सिमट गए हैं।

(यह टिप्पणियां लेखक की पांडुलिपि से ली गई हैं)

—0—